इस पुस्तक का अभ्यास करने का प्रकार ।

(द्वितीयभाग अच्छी प्रकार तैयार होने के पश्चात् इस पाठ को प्रारम्भ कीजिए ।

(१) प्रथम एक पाठ आद्योपान्त पढ़ लीजिए ।

(२) तत्पश्चात् उस में दिये हुए व्याकरण के भाग को विशेष ध्यान पूर्वक पढ़कर व्याकरण की बातें यथावत् सब स्मरण कीजिए ।

(३) पश्चात् जो धातुओं के रूप बनाकर दिये होंगे उन को स्मरण कीजिए । विशेष कर इन रूपों को कण्ठ करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु २० । २५ वार ध्यान से पढ़ कर उनकी विशेषताओं को स्मरण रखना चाहिये ।

(४) पश्चात् परस्मैपद, आत्मनेपद, और उभयपद के धातु अलग अलग हैं । उनको अलग अलग स्मरण करना चाहिए । धातु अर्थ प्रथम संस्कृत में देकर पश्चात् कोष्ठ में भाषा में अर्थ दिया है । इन अर्थों को २५ । ३० वार ध्यान से देखने से ये अर्थ स्मरण रहेंगे ।

(६) पाठकों को उचित है कि वे प्रतिदिन पांच धातुओं के रूप सब कालों में बनाकर उन को लिखकर रखा करें । इस प्रकार करने से धातुओं के रूप भूलेंगे नहीं । धातुओं के रूप यथावत् जानना ही संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करना है, इस लिये इस बात के विषय में आलस्य नहीं होना चाहिए ।

(७) प्रत्येक पाठ के वाक्य कम से कम दस वार पढ़ने चाहियें । और जो संस्कृत का पाठ हो उसको २५ वार बड़ी आवाज में अवश्य पढ़ना चाहिए । यदि कष्ट न हो तो इस पुस्तक के सब श्लोक कण्ठ कीजिए, जिससे बहुत लाभ होगा ।

संस्कृत स्वयं शिक्षक के तृतीयभाग

की

प्रस्तावना।



संस्कृत स्वयं शिक्षक की प्रणाली अब सर्वोपयोगी सिद्ध हो रही है। इसी पद्धति का अवलम्बन करके हजारों संस्कृत प्रेमी भद्रपुरुष संस्कृत मंदिर में प्रविष्ट हो रहे हैं। जो संस्कृत का द्वार खुलता नहीं था, वह इस चावी से खुल गया है। और जो इस द्वार से अंदर जाने का यत्न कर रहे, हैं, उन के अंदर यह विश्वास हुआ है कि, वे ठीक मार्ग से चल रहे हैं।

इसी कारण तीसरे भाग की मांग कई दिनों से हो रही थी और तीसरा भाग शीघ्र तय्यार न होने के कारण स्वयं शिक्षक के ग्राहक हमारे ऊपर बड़ा क्रोध भी करने लगे थे। परंतु वे दिन ही ऐसे थे कि जिन दिनों में इस प्रकार की बड़े पुस्तक छपवाना कठिन था। अब दिन सुधर रहे हैं और इस कारण यह तीसरा भाग हम पाठकों के पास भेज रहे हैं। आशा है कि पाठक पूर्ववत् इस से भी लाभ उठावेंगे और चतुर्थ भाग शीघ्र तैयार करने के लिये हमें उत्साहित करेंगे।

पाठकों को उचित है कि वे इस तीसरे भाग को अधिक सावधानता से पढ़ें। किसी कारण भी शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं। इस भाग में गद्य पाठ रामायण से दिये हैं और सब कविता के पाठ महाभारत से दिये हैं। इन पाठों को जो अच्छी प्रकार पढ़ेंगे, वे रामायण महाभारत के आसान भाग को स्वयं समझ सकेंगे।

यदि पाठक इस भाग को अच्छी प्रकार तैयार करेंगे तो निःसंदेह वे अपना दैनिक व्यवहार, पत्र लेखन आदि संस्कृत में कर सकते हैं। तथा साधारण संस्कृत पुस्तकों का पठन भी बड़ी सुगमता से कर सकते हैं।

जो लोग हमारी संस्कृत स्वयं शिक्षक की प्रणाली की ओर पहिले २ दोष दृष्टि से देखते थे, वे भी अब अनुकूल हुए हैं, और वे भी इस प्रणाली की उपयुक्तता मानने लगे हैं। जिन भद्र पुरुषों ने इस प्रणाली से अपने मकानों में संस्कृत का प्रचार किया है, उन को अनुभव हुआ है कि, यह पद्धति कितनी आसान है।

कई महानुभावों ने इन पुस्तकों से यहां तक लाभ उठाया है कि न केवल उन्होंने स्वयं संस्कृत सीखा है, अपितु अपनी सहधर्मचारिणी धर्मपत्नी को संस्कृत पढ़ाया और अपने पुत्रों को भी पढ़ायाहै;और अब वे मकानोंमें सब व्यवहार संस्कृत में कर रहे हैं। यह बात जो उन के पत्र हमारे पास आरहे हैं उन में लिखी है।

संस्कृत का प्रचार सार्वत्रिक करना ही इस स्वयं शिक्षक का उद्देश्य है, इसलिये ग्राहकों से प्रार्थना है, कि वे बड़े पुरुषार्थ के साथ इन ग्रन्थों को पढ़ें और लाभ उठावें।

स्वाध्यायमण्डल
औंध (सतारा)
(पूनामार्ग)
१।१२।१८

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सूचना—अब कोई विशेष नाम न होने के कारण इस पुस्तक में परीक्षा के प्रश्न रखे नहीं। अब पाठक अपनी योग्यता स्वयं जांच सकते हैं।

संस्कृत स्वयं शिक्षक

भाग तीसरा

क्रिया-पद-विचार ।

पाठ पहिला



य पाठकगण ! इस समय आप संस्कृत-स्वयं शिक्षकके दो भाग पढ़ चुके हैं और संस्कृत में साधारण व्यवहार की बात चीत भी कर सकते हैं । इस संस्कृत-स्वयं-शिक्षक की प्रणाली से आपके अन्दर 'आत्म विश्वास' अवश्य उत्पन्न हुआ होगा संस्कृत स्वयं-शिक्षक उत्तम मार्ग दर्शक है । जो इसके अनुसार अपने मार्ग का अनुसरण करेंगे वे निःसन्देह संस्कृत मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट हो कर, वहां के अमूल्य उपदेश के रत्नों को पाकर उन रत्नों से अपने आप को सुशोभित करेंगे ।

संस्कृत-स्वयं-शिक्षक के दूसरे भाग में आपने नामों का विचार सीखा है। वाक्य में जैसे नाम होते हैं वैसे क्रियापद भी हुआ करते हैं जिनका विचार इस भाग में कराना है।

रामः आम्रं भक्षयति । राम आम खाता है।

इस वाक्य में "राम आम्र" ये नाम हैं और "भक्षयति" यह क्रिया है। क्रिया के बिना वाक्य पूर्ण नहीं हो सकता इस लिए पूर्ण वाक्य बनाने की योग्यता प्राप्त करने के लिये आप को क्रिया पदों का विचार करना चाहिए। वाक्य में निम्न बातें हुआ करतीं हैं:—

(१) नाम—रामः, कृष्णः, ईश्वरः, देवता, फलं, इत्यादि प्रकार के नाम होते हैं।

(२) सर्वनाम—सः सा, तत, सर्व, विश्वं, किं, का, आदि सर्वनाम हैं।

(३) विशेषण—शुभ, सुन्दर, श्वेत, मधुर आदि गुण बताने वाले शब्द विशेषण होते है।

(४) क्रियापद—गच्छति, वदति, करोति, जानाति, आदि क्रियादर्शक शब्द क्रिया पद होते हैं।

(५) अव्यय—च, परंतु, किंतु यदि अपि चेत् इत्यादि शब्द अव्यय होते हैं।

इन पाच अवयवों का निम्न वाक्य में पाठक देख सकते हैं —

सुविद्या भूषितो रामः, पतिव्रतया सीतया सह, इदानीं वनं गच्छति । तं कुमारं रामं, भार्यया सीतया, भ्रात्रा लक्ष्मणेन च सह, वनं गच्छन्तं अवलोक्य, नागरिको जनस्, तं एव अनुगच्छति । भो मित्र ! पश्य ।

इस वाक्य में 'सुविद्या भूषित," "पतिव्रतया" आदि विशेषण हैं । "राम, सीता, लक्ष्मण वन, आदि नाम हैं। "गच्छति, पश्य आदि क्रिया पद हैं 'सह च भो आदि अव्यय हैं । इसी प्रकार आप प्रत्येक वाक्य में देखिए तथा किस शब्द से कौन सा प्रयोजन सिद्ध होता है इसका भी विचार कीजिए । जिससे आप को वाक्य में शब्दों के महत्व का पता लग जायगा । अस्तु ।

अब क्रिया के रूप देते हैं जिनको आप कण्ठ कीजिये ।

परस्मैपद ।*

भू-सत्तायाम् । (गण* १ ला)

भू=धातु अर्थ—होना, अस्तित्व रखना ।

---

*परस्मैपद और गण आदि के विषय में आगे स्पष्टीकरण किया जायगा ।

इस 'भू' धातु के वर्तमान काल का रूप।

वर्तमान काल।

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष ...	भवति	भवतः	भवन्ति
मध्यम पुरुष ...	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष ..	भवामि	भवावः	भवामः

'१ वह, २ तू, ३ मैं' इन तीन को क्रमशः '१ प्रथम, २ मध्यम और ३ उत्तम पुरुष' कहते हैं।

मैं और हम—उत्तम पुरुष।

तू और तुम—मध्यम पुरुष।

वह और वे—प्रथम पुरुष।

एक वचन से एक का, द्विवचन से दो का और बहुवचन से तीन अथवा तीन से अधिक का बोध होता है। इतनी बातें स्मरण होने के पश्चात् निम्नरूप स्मरण कीजिये:—

वद् = व्यक्तायां वाचि।

वद् = बोलना, स्पष्ट बोलना।

पुरुषः	एक वचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथम पुरुषः	वदति	वदतः	वदन्ति
मध्यम पुरुषः	वदसि	वदथः	वदथ
उत्तम पुरुषः	वदामि	वदावः	वदामः

अब इन क्रियाओं का उपयोग देखिए:—

उत्तम पुरुष।

(१) अहं वदामि। ... ... मैं बोलता हूं।

(२) आवां वदावः। ... ... हम दोनों बोलते हैं।

(३) वयं वदामः। ... ... हम सब बोलते हैं।

मध्यम पुरुष।

(१) त्वं वदसि। ... ... तू बोलता है।

(२) युवां वदथः। ... ... तुम दोनों बोलते हो।

(३) यूयं वदथ। ... ... तुम सब बोलते हो।

प्रथम पुरुष।

(१) स वदति। ... ... वह बोलता है।

(२) तौ वदतः। ... ... वे दोनों बोलते हैं।

(३) ते वदन्ति। ... ... वे सब बोलते हैं।

संस्कृत में 'अहं, त्वं, सः' आदि सर्वनाम वाक्यों में रखने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि आप चाहें रख सकते हैं। यदि न चाहें न रखिए। क्रिया पदों में स्वयं 'एक, दो, बहुत' संख्या बताने की शक्ति रहती है। जैसा:—

वदावः—हम दोनों बोलते हैं।

वदामः—हम सब बोलते हैं।

वदसि—तू एक बोलता है।

वदन्ति—ये सब बोलते हैं।

इस प्रकार केवल क्रियाओं से ही स्वयं अर्थ निष्पन्न होता है। अस्तु। निम्न धातुओं के रूप पूर्व के समान ही होते हैं:—

गण १ लट्। परस्मैपद।

१ अट्=गतौ। (जाना)=अटति।

२ अत्=सातत्य गमने। (हमेशा जाते रहना, गमन करना) =अतति।

३ अर्घ्=मूल्ये। (मूल्य-कीमत होना)=अर्घति।

४ अर्च्=पूजायाम्। (पूजा करना) अर्चति।

५ अर्ज्=अर्जने। (कमाना)=अर्जति।

६ अर्ह्=पूजायाम्। (योग्य होना)=अर्हति।

७ अव्=रक्षणे। (संरक्षण करना)=अवति।

इन के रूप 'वद्' धातु के समान ही हुआ करते हैं।

(१) रामो अटति.............राम घूमता है।

(२) राम लक्ष्मणौ अटतः। राम और लक्ष्मण (ये दोनों) घूमते हैं।

(३) जनाः अटन्ति । ....सब लोक भ्रमण करते हैं ।
(४) त्वं अतसि । ... ... तू जाता है ।
(५) यूयं अतथ । ... ... तुम सब चल रहे हैं ।
(६) युवां अवथः । ... ... तुम दोनों रक्षण कर रहे हो ।
(७) सुवर्णं अर्घति ।... ... सोने का मूल्य होता है ।
(८) देवदत्तःअर्चति । ... देवदत्त पूजा करता है ।

पाठ २.

कौसलः–देश का नाम
स्फीतः–उन्नत, बड़ा, शुद्ध
मुदितः–आनन्दित
जनपदः–राष्ट्र
निर्मिता–बनाई हुई
अमरावती–देवों की नगरी
मंत्रज्ञाः–गुप्त बातें जानने वाले उत्तम सलाहकार
प्रशान्त–शांतियुक्त
तप्यमान–तपने वाला
वंशकर–वंश करने वाला
यजामि–यज्ञ करूंगा
समानयत्–रोनेवाला चिल्लाने वाला
अनुज्ञात–आज्ञा किया हुआ
पावक–अग्निः
भूत–प्रकट हुआ २ तेज
पायस–खीर
पात्री–बरतन
तथेति–ठीक ऐसा कह कर
प्रीतः–संतुष्ट हुआ
अभिवाद्य–नमस्कार करके

अंतःपुरः–स्त्रियों का स्थान
पुत्रीय–पुत्र उत्पन्न करने वाला
अर्ध–आधा
अवशिष्ट–बाकी, शेष
दारक्रिया–विवाह
निवसति–रहता है।
पौरप्रिय–जनों का प्यारा
वशी–इन्द्रियों को स्वाधीन रखने वाला
सत्याभिसन्धः–सत्य प्रतिज्ञा करने वाला
इङ्गितज्ञाः–गुप्त विचार जानने वाले
मन्त्रिणः–वजीर, प्रधान
मृषावादी–झूठ बोलनेवाला
बभूव–हुआ
चिंतयान–चिंता करने वाला
बुद्धि–विचार
श्लक्ष्णं–नरम, मीठा
अब्रवीत्–बोला

हयमेधः–, वाजिमेधः– अश्वमेध
इष्टिः–यज्ञ
प्रादुर्भूत्–प्रकट हुआ
दिनकरः–सूर्य
प्रयच्छ–दो
प्राप्स्यसे–प्राप्त करोगे
धारयांचक्रु–धारण किये
नावमिके–नवमी
बाल्यात्प्रभृति–बचपन से लेकर
सुस्निग्ध–मित्र
हयः–घोड़ा
अनुजः–छोटा भाई
हृष्टः–संतुष्ट
अनुगृहीत–कृपा की
परिवृद्धिः–उन्नति
व्रतस्थः–व्रत करने वाला
विघ्नकरौ–विघ्न करने वाले
विमर्शन–कष्ट, दुःख
कामरूपिणौ–मनमाने रूप धारण करने वाले
भवतः–आपका

समास।

१ मन्त्रज्ञः—मन्त्रान् जानाति इति मन्त्रज्ञः।

२ पौरप्रियः—पौराणां नागरिकाणां जनानां प्रियः

३ मृषावादी—मृषा असत्यं वदतीति मृषावादी।

४ व्रतस्थः—व्रते तिष्ठतीति व्रतस्थः।

५ विघ्नकरः—विघ्नं करोतीति विघ्नकरः।

६ राजश्रेष्ठः—राज्ञां श्रेष्ठः राजश्रेष्ठः।

७ परदाररतः—परेषां दाराः परदाराः। परदारासु रतः परदाररतः।

८ दिनकरः—दिनं दिवसं करोतीति दिनकरः।

९ पायसपूर्णा—पायसेन पूर्णा पायसपूर्णा।

१० देवनिर्मितं—देवैः निर्मितं देवनिर्मितम्।

११ प्रजाकरं—प्रजां करोतीति प्रजाकरं।

१२ दिव्यलक्षणं—दिव्यं लक्षणं यस्य स दिव्यलक्षणः। तं।

संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणे बालकाण्डम्।

प्रथमः खण्डः

सरयू तीरे कोसलो नाम स्फीतो मुदितो जनपद आसीत्। तस्मिन् स्वयंमनुना अयोध्या नाम नगरी निर्मिता। तत्र तु दशरथो नाम राजा निवसति स्म। स च राजश्रेष्ठः पौरप्रियो यशोसत्याभिसन्धः पुरीं पालितवान्। इन्द्रो यथा अमरावतीम्।

तस्य मन्त्रज्ञा इङ्गितज्ञाश्च अष्टौमन्त्रिणो बभूवुः। पुरे वा राष्ट्रे वा कश्चिद् मृषावादी नरो नासीत्। न कोऽपि दुष्टः परदाररतश्च। सर्वं राष्ट्रं प्रशांतमासीत्।

तस्य तु धर्मज्ञस्य सुतार्थं ताप्यमानस्य वंशकरः सुतो न बभूव। सुतार्थं चिन्तयानस्य तस्य बुद्धिरासीत्। अश्वमेधेन यजामि। इति। ततो धर्मात्मा पुरोहितान् आनयत्, तान् पूजयित्वा च श्लक्ष्णं वचनम् अब्रवीत्। मम वै सुतार्थं लालप्यमानस्य सुखं नास्ति। तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामि। इति। अनुज्ञातश्च पुरोहितैः स यज्ञमारभत। पुत्रकारणाद् इष्टिं च प्राक्रमद्। ततः पावकाद् अद्भुतं भूतं प्रादुरभूत्। दिनकरसदृशं प्रदीप्तं तद्भूतं हस्ते पायसपूर्णपात्रीं धारयन्नब्रवीत्। राजन् इदं देवेभ्यः प्राप्तम्। तदिदं देवनिर्मितं प्रजाकरं पायसं गृहाण। भार्याभ्यः प्रयच्छ च। तासु प्राप्स्यसे पुत्रान्। इति।

तथेति नृपतिः प्रीतः। आर्धेत्रायतं प्रविश्य चान्तःपुरं कौशल्यामुवाच। पुत्रीयं पायसं गृहाण इति अर्धं ततः कौशल्यायै ददौ। अर्धस्यार्धं सुमित्रायै। अवशिष्टं च कैकेय्यै ददौ। तत् सर्वा प्राश्य तेजस्विनो गर्भान् धारयाञ्चक्रुः।

ततो द्वादशे चैत्रे मासे नावमिके तिथौ कौशल्या दिव्य लक्षणं पुत्रं रामम् अजनयत। कैकेय्यां सत्यपराक्रमो भरतो जज्ञे। सुमित्राच लक्ष्मणशत्रुघ्नौ जनयामास। तदा अयोध्यायां महानुत्सव आसीत्।

बाल्यात्प्रभृति लक्ष्मणो प्रियकरः सुस्निग्धश्च बभूव। तेन विना रामो निद्रां न लभते। यदा हि रामोहयमारूढो मृगयां याति तदैनं पृष्ठतो लक्ष्मणो धनुः परिपालयन् याति। तथैव लक्ष्मणानुजः शत्रुघ्नो भरतस्य पृष्ठतोयाति। यदा च ते सर्वे ज्ञानिनो गुणसंपन्नाः कीर्तिमन्तः सर्वज्ञा अभवन्, तदा पितादशरथोऽतीव हृष्टः।

अथ राजा तेषां दारक्रियां प्रति चिन्तयामास। मन्त्रिमध्ये चिन्तयमानस्य तस्य महातेजो विश्वामित्रो मुनिः प्राप्तः। तं पूजयित्वा राजोवाच। अनुगृहीतोऽहम्। परिवृद्धिमिच्छामि ते कार्यस्य। न विमर्शनमर्हति भवान्। कथयतु भवान्। करिष्यामि तदशेषेण। भवानेव ममदैवतम्। इति। श्रुत्वा तद् विश्वामित्रोवाच। राजश्रेष्ठ व्रतस्थोऽस्मि। तस्य तु व्रतस्य मारीचसुबाहू नाम द्वौ राक्षसौ कामरूपिणौ विघ्नकरौ। तस्माद् व्रतसम्पादनार्थं ज्येष्ठ-पुत्रो रामो भवतो मे सहायो भवतु। इति।

पाठ ३.

निम्न धातुओं के रूप वद् धातु के समान ही कीजिए ।
गण १ ला । परस्मैपद ।

(१) एज्=कंपने । (कांपना)=एजति ।

(२) कण्=आर्तस्वरे । (दुःख के साथ रोना)=कणति ।

(३) कील्=बंधने । (बांधना)=कीलति ।

(४) कुण्ठ्=वैकल्ये (लूला होना)=कुंठति ।

(५) कूज्=अव्यक्ते शब्दे । (अस्पष्ट श. कूजति

(६) क्रन्द्=रोदने आह्वाने च । (रोना अथवा आह्वान करना)=क्रन्दति ।

(७) क्रीड्=विहारे । (खेलना)=क्रीडति ।

(८) क्वथ्=निष्पाके । (कषाय करना, काढ़ा करना)= क्वथति ।

(९) क्षर=संचलने । (पिघलना)=क्षरति ।

(१०) खन्=अवदारणे । (जमीन खोदना)=खनति ।

(११) खाद्=भक्षणे। (खाना)=खादति।
(१२) खेल्=क्रीडायाम्। (खेलना)=खेलति।
(१३) गद्=व्यक्तायाँ वाचि। (बोलना)=गदति।
(१४) गम् (गच्छ)=गतौ। (जाना)=गच्छति।

वाक्य।

१ वृक्षः एजति। ...	वृक्ष कांपता है।
२ वृक्षौ एजतः। ...	दो वृक्ष हिलते हैं।
३ वने वृक्षा एजन्ति।	वन में बहुत वृक्ष हिल रहे हैं।
४ त्वं क्रणसि। ...	तू रोता है।
५ युवां क्रणथः। ...	तुम दोनो रोते हो
६ भित्तिः संकुचति।	दिवार सुकड़ती है।
७ ते कुंठन्ति। ...	वे सब लूले होते हैं।
८ काकौ कूजतः। ...	दो कौवे शब्द करते हैं।
९ पक्षिणः कूजन्ति।	बहुत पक्षी शब्द कर रहे हैं।
१० बालकाः क्रन्दन्ति।	लड़के रोते हैं।
११ स्त्रीपुरुषौक्रन्दतः।	स्त्री ओर पुरुष ये दोनों चिल्लाते हैं।

१२ मनुष्यः क्रन्दति ।	एक मनुष्य रोता है।
१३ स कुत्र क्रीडति ?...	वह कहां खेलता है।
१४ युवां कुत्र क्रीडथः ?	तुम दोनों कहां खेलते हो ?
१५ आवां अत्र क्रीडावः।	हम दोनों यहाँ खेलते हैं।
१६ वयं अत्र क्रीडामः।	हम सब यहाँ खेलते हैं।
१७ तैलं सरति।...	तेल पिघल रहा है।
१८ अश्वः शष्पं खादति।	घोड़ा घास खाता है।
१९ अश्वौ तृणं खादतः।	दो घोड़े घास खा रहे हैं।
२० अश्वा तृणं खादन्ति।	बहुत घोड़े घास खा रहे हैं।
२१ धनदासः खनति।	धनदास खोदता है।
२२ ते खनन्ति। ...	वे सब खोदते हैं।
२३ धनदास-विष्णुमित्रौ खनतः। ..	धनदास और विष्णुमित्र ये दोनों खोदते हैं।
२४ तत्र सर्वेजनाः खनन्ति।	वहां सब लोग खोदते हैं।
२५ बालको मोदकं खादति।	लड़का लड्डू खाता है।
२६ बालकौ मोदकौ खादतः।	दो बालक दो लड्डू खाते हैं॥
२७ बालका मोदकान् खादन्ति। ...	बहुत बालक बहुत लड्डू खाते हैं

२८ अश्वाश्च गर्दभाश्च तृणं खादन्ति ।	बहुत घोड़े और बहुत गधे घास खाते हैं ।
२९ अहं खेलामि । ...	मैं खेलता हूं ।
३० रामश्च अहं च खेलावः ।	राम और मैं दोनों खेलते हैं
३१ सर्वे वयं खेलामः ।	हम सब खेलते हैं ।
३२ वयं गच्छामः । ...	हम सब जाते हैं ।

पाठकों को उचित है, कि उक्त वाक्यों में क्रियाओं के रूप किस प्रकार बनाये जाते हैं, और उपयोग में लाए जाते हैं, इसका ठीक ठीक निरीक्षण करें । यहां अशुद्ध वाक्य होना संभव है । कर्ता का एकवचन हुआ तो क्रिया का भी एकवचन होना चाहिए । कर्ता का बहुवचन हुआ तो क्रिया का भी बहुवचन होना चाहिए । देखिए—

गम् गतौ ।

सः गच्छति ।	तौ गच्छतः ।	ते गच्छन्ति ॥
त्वं गच्छसि ।	युवां गच्छथः ।	यूयं गच्छथ ॥
अहं गच्छामि ।	आवां गच्छावः ।	वयं गच्छामः ॥

खेल क्रीडायाम् ।

अहंखेलामि ।	आवां खेलावः ।	वयं खेलामः ॥
त्वं खेलसि ।	युवां खेलथः ।	यूयं खेलथ ॥
स खेलति ।	तौ खेलतः ।	ते खेलन्ति ॥

खाद् भक्षणे।

त्वं खादसि। युवां खादथः। यूयं खादथ॥
अहं खादामि। आवां खादावः। वयं खादामः॥
स खादति। तौ खादतः। ते खादन्ति॥

खन् अवदारणे।

अहं खनामि। आवां खनावः। वयं खनामः।
त्वं खनसि। युवां खनथः। यूयं खनथ।
रामः खनति। रामलक्ष्मणौ खनतः। रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना खनन्ति।

क्रिया के रूपों की तैयारी, इस प्रकार करनी चाहिए ताकि कभी भूल न हो। पाठकों को उचित है कि वे सब क्रियाओं के सब रूप बना कर इस प्रकार लिखें।

उत्तम पुरुष।

अहं — (मैं एक) — वदामि — (बोलता हूं)
आवां — (हम दो) — वदावः — (बोलते हैं)
वयं — (हम सब) — वदामः — (,,)

मध्यम पुरुष

त्वं — (तू एक) — वदसि — (बोलता है)
युवां — (तुम दो) — वदथः — (बोलते हो)
यूयं — (तुम सब) — वदथ — (,,

प्रथम पुरुष ।

सः — (वह एक) — वदति — (बोलता है)

तौ — (वे दो) — वदतः — (बोलते हैं)

ते — (वे सब) — वदन्ति — („

इन रूपों को देखने से पता लगेगा कि इन रूपों का किस प्रकार उपयोग करना चाहिए। इस प्रकार को पाठक विशेष प्रकार स्मरण रखें, कभी न भूलें। इनके उपयोग को स्मरण रखने से ही पाठक शुद्ध वाक्य बना सकते हैं, नहीं तो सर्वत्र अशुद्धि हो जायगी। 'कर्ता और क्रिया' का पुरुष और वचन एक जैसा होना चाहिए, जैसा भाषा में भी हुआ करता है। इसमें थोडी सी गलती होने से सब वाक्य अशुद्ध होता है। इसलिए इस विषय में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

पाठ ४.

धर्मः—कर्तव्य कर्म

अक्रोधः—शांति

संविभागः—कार्य के उत्तम विभाग

आर्जवं—सरल स्वभाव

भृत्य-भरणं—नौकरों का पोषण

समाप्यते—समाप्त होता है

दद्यात्—दान करे

याचेत–भीख मांगे
यजेत–यज्ञ करे
दस्युवधः–डाकुओं का नाश
शौच–शुद्धता
परिचरेत्–सेवा करे
कथंचन–किसी प्रकार भी
उच्यते–कहा जाता है
छत्रं–छाता
वष्टनं–साफा
यातयाम–बासी पुराना
भर्तव्य–पोषण के लिए योग्य
पाक यज्ञ–अन्न का यज्ञ
अव्रतवान्–नियम हीन
क्षमा–सहनशीलता
प्रजनः–संतान उत्पन्न करना
अद्रोहः–द्रोह न करना
सार्ववर्णिकः–सर्व वर्णों के सम्बन्ध के

वक्ष्यामि–कहूंगा
याजयेत्–यज्ञ करावे
अध्यापयेत्–सिखावे
अधीयीत–सीखे
परिपालयेत्–पालन करे
रणं–युद्ध
अनुपूर्वशः–क्रम से
संचयः–संग्रह
जातु–कभी भी
आंरीर–बिछौना
उपानह–जूता
व्यजनं–पंखा
पिंडः–चावल का गोला
अनपत्यः–जिसके सन्तान नहीं है
स्वाहा, वषट्–यज्ञविशेष
स्वयं–खुद

समास।

१ अनपत्यः–न विद्यते अपत्यं यस्य सः।
२ स्वाध्यायस्य अभ्यसनं स्वाध्यायाभ्यसनम्।
३ पाकस्य पक्वान्नस्य यज्ञः पाकयज्ञः।

वचन पाठ । महाभारतम्

युधि० उ० के धर्माः सर्ववर्णानां चातुर्वर्ण्यस्य के पृथक् ।
चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च राजधर्माश्च के मताः ॥ १

भी० उ० अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा ।
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च ॥ २
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः ।
ब्राह्मणस्य तु यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि केवलं ॥ ३
दममेव महाराज धर्ममाहुः पुरातनं ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव तत्र कर्म समाप्यते ॥ ४
क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामि भारत ॥
दद्याद्राजन्न याचेत यजेत न च याजयेत् ॥ ५

---

(१) सर्व-वर्णानां के के धर्माः ? चातुर्वर्ण्यस्य च के के पृथक् धर्माः ? चातुर्वर्ण्याश्रमाणां च के धर्माः । राजधर्माः च के मताः ? । (२) अक्रोधः—न क्रोधः । स्वेषु दारेषु स्वकीयासु स्त्रीषु । प्रजनः संतानोत्पत्तिः । शौचं शुद्धता । (३) यो ब्राह्मणस्य धर्मः अस्ति । तं धर्मं ते तुभ्यं वक्ष्यामि कथयिष्यामि वदिष्यामि वा । (४) दमः इन्द्रियदमनम् । पुरातनं सनातनम् । स्वाध्यायस्य वेदस्य अभ्यसनं अध्ययनम् । (५) दद्यात् दानं कर्तव्यम् । न याचेत याचना न कर्तव्या ।

नाध्यापयेदधीयीत प्रजाश्च परिपालयेत् ।
नित्योद्युक्तो दस्युवधे रणे कुर्यात्पराक्रमम् ॥ ६
दानमध्ययनं यज्ञः शौचे न धन संचयः ।
पितृवत्पालयेद्वैश्यो युक्तः सर्वान्पशूनिह ॥ ७
शूद्र एतान्परिचरेत् त्रीन्वर्णाननुपूर्वशः ।
सचयांश्च न कुर्वीत जातु शूद्रः कथंचन ॥ ८
अवश्य भरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते ।
छात्रं वेष्टनमौशीर मुपानद्व्यजनानि च ॥ ९
यातयामानि देयानि शूद्राय परिचारिणे ।
देयः पिंडोऽनपत्याय भर्तव्यौ वृद्धदुर्बलौ ॥ १०
स्वाहाकार वषट्कारौ मंत्रः शूद्रे न विद्यते ।
तस्माच्छूद्रः पाक यज्ञैर्यजेतात्रतवान्स्वयम् ॥ ११

दस्युनां चौरादीनां दुष्टानां वधः दस्यु वधः । (७) धनस्य संचयः संग्रहः धनसंचयः । वैश्यः सर्वान् पशून् इह युक्त स्व-कर्मणि नियुक्तः पितृवत् यथा पिता स्वपुत्रवान् पालयति तथा पालयेत् । (८) एतान् त्रिवर्णान् शूद्रः विद्याहीनः परिचरेत् ॥ संचयान् धनस्य संग्रहं कथंचन कदापि शूद्र न कुर्वीत ।

पाठ ५.

गण १ला । परस्मैपद ।

(१) गल् = भक्षणे स्रावे च । = (खाना और गलना) = गलति ।

(२) गुंज् = अव्यक्ते शब्दे । = (अस्पष्ट शब्द करना) = गुञ्जति ।

(३) गुह् = संवरणे । = (गुप्त रखना, ढांपना) = गूहति ।

(४ चन्द् = आल्हादे दीप्तौ च । = (खुश होना, प्रकाशना) = चन्दति ।

(५) चम् = अदने । = (भक्षण करना) = चमति ।

(६) चर् = गतौ । = (जाना) = चरति ।

(७) चर्च् = परिभाषणे । = (शास्त्रार्थ करना) = चर्चति ।

(८) चर्व् = अदने । = (चबाना) = चर्वति ।

(९) चल् = कम्पने । = (कांपना, हिलना) = चलति ।

(१०) चष् = भक्षणे । = (खाना) = चषति ।

(११) चिल्ल् = शैथिल्ये । = (ढीला होना) = चिल्लति ।

(१२) चुम्ब् = वक्त्र संयोगे । = (चुम्बन करना, चूमना) = चुम्बति ।

(१३) चूष् = पाने । = (पीना) = चूषति ।

(१४) जप् = व्यक्तायां वाचि मानसे च । = (जपना, ध्यान से जपना) = जपति ।

(१५) जम् = अदने । = (खाना) = जमति ।

(१६) जल्प् = व्यक्तायां वाचि । = (बोलना) = जल्पति ।

(१७) जिन्व् = प्रीणने । = (खुश होना) = जिन्वति ।

उक्त धातुओं के कुछ रूप।

सः गलति ।	तौ गलतः ।	ते गलन्ति ॥
त्वं गुंजसि ।	युवां गुंजथः ।	यूयं गुंजथ ॥
अहं चन्दामि ।	आवां चन्दावः ।	वयं चन्दामः ॥
अहं चमामि ।	आवां चमावः ।	वयं चमामः ॥
त्वं चरसि ।	युवां चरथः ।	यूयं चरथ ॥
स चर्चति ।	तौ चर्चतः ।	ते चर्चन्ति ॥
स चर्वति ।	तौ चर्वतः ।	ते चर्वन्ति ॥
त्वं चलसि ।	युवां चलथः ।	यूयं चलथ ॥
अहं चपामि ।	आवां चपावः ।	वयं चपामः ॥
अहं चिह्नामि ।	आवां चिह्नावः ।	वयं चिह्नामः ॥
त्वं चुम्बसि ।	युवां चुम्बथः ।	यूयं चुम्बथ ॥
स चूषति ।	तौ चूषतः ।	ते चूषन्ति ॥
अहं जपामि ।	आवां जपावः ।	वयं जपामः ॥
त्वं जमसि ।	युवां जमथः ।	यूयं जमथ ॥

स जल्पति ।	तौ जल्पतः ।	ते जल्पन्ति ॥
त्वं जिन्वसि ।	युवां जिन्वथः ।	यूयं जिन्वथ ॥

कोकिलः कथं गुञ्जति । शृणु ।
तत्र वृते द्वौ कोकिलौ गुञ्जतः ।
अत्र द्वौ ब्राह्मणौ जपतः ।
त्वं किमर्थं जल्पसि ।
स सर्वं गूहति ।

संस्कृत में परस्मैपद और आत्मनेपद इस नाम के दो पद हैं। इन का विशेष विचार आगे किया जायगा। इस समय तक धातु परस्मैपद के ही दिये हैं।

परस्मैपद—गच्छति, वदति, करोति, भवति ।

आत्मनेपद—एधते, ईक्षते, वन्दते, भाषते ।

आत्मनेपद के धातुओं के लिये 'ते' अंत में प्रत्यय लगता है और परस्मैपद के अंत में 'ति' लगता है। सामान्यतः आप इस समय इतना ही फर्क समझ लीजिए। आगे जाकर आपको विशेष मालूम हो जायगा।

वर्तमान काल।

परस्मैपद के लिये प्रत्यय।

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ति	... तः	... न्ति
मध्यम पुरुष	सि	... थः	... थ
उत्तम पुरुष	मि	... वः	... मः

ये प्रत्यय किस प्रकार लगते हैं, इस का ज्ञान निम्न रूप देखने से हो सकता है :—

गच्छ-ति	गच्छ-तः	गच्छ-न्ति
गच्छ-सि	गच्छ-थः	गच्छ-थ
गच्छा-मि	गच्छा-वः	गच्छा-मः

वद-ति	वद-तः	वद-न्ति
वद-सि	वद-थः	वद-थ
वदा-मि	वदा-वः	वदा-मः

उत्तम पुरुष के प्रत्ययों से पहिले अ के स्थान पर आ होता है। जैसाः—गच्छामि, वदामि, जल्पामि, जपामि तपामि इत्यादि।

उक्त प्रत्यय लगा कर सब धातुओं के रूप कीजिए। प्रत्येक धातु के सब रूप लिख कर रखने चाहिए। लिखने में आप भूल करेंगे तो सुधारने में कठिनता होगी। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ रूप लिखने चाहिएं। रूप लिखने का प्रकार नीचे दिया है :—

जीव्—प्राण धारणे ।=(जीता रहना, जीना)

परस्मैपद । वर्तमान काल गण १ला ।

उत्तम पुरुष

१ अहं जीवामि—मैं जीता हूं ।

२ आवां जीवावः—हम दोनों जीते हैं ।

३ वयं जीवामः—हम जीते हैं ।

मध्यम पुरुष

१ त्वं जीवसि—तू जीता है ।

२ युवां जीवथः—तुम दोनों जीते हो ।

३ यूयं जीवथ—तुम सब जीते हो

प्रथम पुरुष

१ स जीवति—वह जीता है ।

२ तौ जीवतः—वे दोनों जीते हैं ।

३ ते जीवन्ति—वे सब जीते हैं ।

इस प्रकार सब धातुओं के रूप लिख कर स्मरण रखने चाहिएं । तब आगे का अभ्यास करने के लिये आप को आसानी होगी । आप पिछला न भूलेंगे तो अच्छा होगा नहीं तो आगे का अभ्यास होना असम्भव हो जायगा ।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है कि काल तीन होते हैं। (१) वर्तमान काल, (२) भूतकाल, (३) भविष्य काल गत समय को भूत काल कहते हैं, जो चल रहा है वह वर्तमान काल है और जो आने वाला है वह भविष्य काल है।

वर्तमान काल · स जप-ति = वह जप करता है।

भूतकाल ··· स अ-जप-त् = उस ने जप किया।

भविष्य काल स जपिष्यति = वह जप करेगा।

इस से तीनों कालों की कल्पना आपको हो सकती है। वर्तमान काल के प्रत्ययों के पूर्व 'ष्य' लगाने से भविष्य काल बनता है। जैसा देखिए :—

जपिष्यति	जपिष्यतः	जपिष्यन्ति।
जपिष्यसि	जपिष्यथः	जपिष्यथ।
जपिष्यामि	जपिष्यावः	जपिष्यामः।
*गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति।
गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ।
गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः।
चलिष्यति	चलिष्यतः	चलिष्यन्ति।
चलिष्यसि	चलिष्यथः	चलिष्यथ।
चलिष्यामि	चलिष्यावः	चलिष्यामः।

*भविष्य काल में गम् धातु के लिये गच्छ आदेश नहीं होता।

इसी प्रकार सब धातुओं के रूप आप आसानी से कर सकते हैं। इस भविष्य काल के रूप बनाना कोई कठिन नहीं है।

पाठ ६-।

याच्यमान—मांगा हुआ
विगत-चेतनः—बेहोश
मुहूर्तं—घड़ीभर
श्रेयः—कल्याण
राजीवं—कमल
लोचनं—नेत्र
कूटं—कपट
वियोग—दूर होना
प्रतिश्रुत्य—सुनकर
हातुं—छोड़ने के लिये
विपर्य्ययः—उलटा प्रकार
प्रोत्साहित—जोश उत्पन्न किया
आह्वयत्—बुलाया

अश्विनोपमौ—अश्विनीकुमारों के सदृश
अर्धयोजन—एक कोश, दो मील
बला—, अतिबला— —विद्याओं के नाम
स्पृष्ट्वा—स्पर्श करके
प्रतिगृहीतवान—लिया
ददृशाते—देखा
नावं—नौका
शिव—कल्याणयुक्त
कालात्ययः—समय का अतिक्रम
समाप्ति समयः—समाप्ति का काल

अभिवर्षतः—वर्षा करते हैं
स्वेन—अपने
बहुरूप—बहुत प्रकार
प्रत्युवाच—उत्तर दिया
ऊन—कम, न्यून
कालोपम—मृत्यु के सदृश
सक्रोधं—क्रोध के साथ
संप्रति—अब
अयुक्त—अयोग्य
कुलं—वंश
प्रहृष्ट—खुश
वदनं—मुंह
अनुजग्मतुः—पीछे से जाते रहे
सलिलं—जल
ददामि—देता हूं
क्षुत्पिपासे—भूख और प्यास
संपन्न—युक्त
शरत्कालीन—शरद् ऋतु का
दिवाकर—सूर्य

कथयांचक्रुः—कहा
आरोहतु—चढ़ो
आसाद्य—प्राप्त होकर
घोरसंकाशं—भयानक
पप्रच्छ—पूछा
चिरं—बहुत समय तक
सुन्द, मारीच—राक्षस का नाम
अत्यर्धं—करीब आधा
राजसूनुः—राजपुत्रः
मुष्टि—मुष्टि
बबंध—बांधली
ज्या-घोष—धनुष की डोरी की [illegible] ध्वनि
क्रोधान्धा—क्रोध से अन्ध
अशनि—विद्युलि
पतन्ती—गिरने वाली
शर—बाण
पपात—गिर पड़ी
ममार—मर गई

इक्ष्वाकु–कुल का नाम
दारुण–भयानक
नाग–हाथी, सांप
शक्रः–इन्द्र
आहृत्य–घेरकर
निष्कंटकं–निरुपद्रव
नृशंस–बुरा, निंद्य
अनृशंस–स्तुत्य
नादयन्–गर्जित करता हुआ
अकरोत्–किया
रजोमेघ–धूलि का बादल
विमोहित–भ्रमित किया
विक्रान्ता–भयानक
उरसि ––छाती में
विदारयांचकार––तोड़ लिया

समास।

१ विगतचेतनः––विगता चेतना यस्य सः।

२ प्रहृष्टवदनः––प्रहृष्टं वदनं यस्य सः।

३ विद्यासम्पन्नः––विद्यया संपन्न।

४ रजोमेघः––रजसः मेघ।

५ प्रजारक्षणकारणात्––प्रजायाः रक्षणं प्रजारक्षणम्
तस्य कारणात्।

संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायणे बालकाण्डम् ।

द्वितीयः खण्डः ।

पुत्रं रामचन्द्रं मुनिना याच्यमानं श्रुत्वा राजा दशरथस्तावद् विगतचेतन इव मुहूर्तं बभूव । विश्वामित्रः पुनरुवाच । पुनः पुनरपि व्रतं सम्पाद्य समाप्तिसमय एवैतौ राक्षसौ वेदिं मांसरुधिरेण अभिवर्षतः । रामस्तु स्वेन दिव्येन तेजसा राक्षसानां विनाशने शक्तः । अस्मै श्रेयश्च बहुरूपं प्रदास्यामि । यज्ञस्य दशरात्रं हि राजीवलोचनं रामं दातुमर्हसि । इति । दशरथस्तु प्रत्युवाच । ऊनषोडशवर्षो मे रामः । न योग्यो राजीवलोचनो रक्षसाम् । राक्षसा हि कूटयुद्धाः । अपि च नैव जीवामि रामस्य वियोगे मुहूर्तमपि । कालोपमौ च मारीचसुबाहू । अतो न दास्यामि पुत्रकम् । इति । कौशिकस्तु प्रत्युवाच सक्रोधम् । अर्थं प्रतिश्रुत्यापि संप्रति प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि अयुक्तोऽयं विपर्य्ययो राघवाणां कुलस्य । इति । एवं विश्वामित्रस्य क्रोधेन भीतो दशरथः । वशिष्ठेन च संमन्त्र्य प्रोत्साहितः । ततः प्रहृष्टवदनः सलक्ष्मणं राममाह्वयत् । कुशिकपुत्राय तौ ददौ च । तावपि रामलक्ष्मणौ धनुषी गृहीत्वा पितामहसदृशं विश्वामित्रमश्विनोपमौ कुमारावनुजग्मतुः ।

अर्धयोजनं गत्वा सरयूनदीतीरे विश्वामित्रो राममुवाच वत्स, सलिलं गृहाण । नानाविधान् मंत्रान् विद्ये च

बलातिबले नाम तुभ्यं ददामि। आभ्यां विद्याभ्यां ते क्षुत्पिपासे अपि न भविष्येते। इति। रामोऽपि जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः प्रतिगृहीतवान् एतान् मन्त्रान्। एवं विद्यासम्पन्नो रामः शोभितो यथा शरत्कालीनो दिवाकरः अग्रगामिनौ च तौ वीरौ राजपुत्रौ। ततो गङ्गा-सरयू-सङ्गमे पुण्यमाश्रमपदमेकं ददृशाते। मुनयोऽपि तत्रस्थाः शुभं नावमेकाम् आनीय विश्वामित्रं कथयांचक्रुः। आरोहतु भवान् राजपुत्रैः सह नावम्। शिवास्ते पन्थानः सन्तु। कालात्ययो न भवतु। इति। विश्वामित्रश्च तान् ऋषीन् पूजयामास। पश्चाच्च स राजपुत्राभ्यां सहितः गङ्गां ततार। अतिधार्मिकौ च तौ राजपुत्रौ दक्षिणं तीरमासाद्य नदीभ्यां प्रणामं कृतवन्तौ। ततो घोरं सङ्काशं वनं दृष्ट्वा स इक्ष्वाकु-नन्दनो रामो मुनिश्रेष्ठं विश्वामित्रं पप्रच्छ। अहो सभीकं वनम्। किं परम् अतिदारुणम्। इति।

विश्वामित्र उवाच। वीरश्रेष्ठ अत्र खलु पुरा धनधान्यसंपन्नौ स्फीतौ जनपदावेव सुचिरम् आस्ताम्। कालान्तरे तु ताडका नाम नागसहस्रबलं धारयन्ती कामरूपिणी राक्षसी बभूव। सा च सुन्दस्य भार्या। पराक्रमेण शक्रसदृशो मारीच स्तु तस्याः पुत्रः। एवंविधा तु साऽधुना पन्थानम् अध्यर्धयोजनम् आवृत्य तिष्ठति। अतएव च वनमेतद् गन्तव्यमस्माभिः। बाहुबलेन त्वम् इमां दुष्टचारिणीं हन्तुम् अर्हसि। ममाज्ञया निष्कण्टकम् इमं देशं कुरु। तस्या हि

कारणाद् ईदृशमपि देशं न कश्चिद् आगच्छति । अतः स्त्रीवधेऽपि मैव घृणां कुरु । चातुर्वर्ण्यस्य हितार्थं हि प्रजारक्षण-कारणाद् राजसूनुना नृशंसं वा अनृशंसं वा कर्म कर्तव्यम् । इति । एवमुक्तो रामचन्द्रो धनुर्धरो धनुर्मध्ये मुष्टिं बबन्ध । शब्देन दिशो नादयन् तीव्रं ज्याघोषं चाकरोत् । राक्षसी तु तदा क्रोधान्धा तत्र प्राप्ता । राघवौ सौमी तया मुहूर्तं रजोमेघेन विमोहितौ । किंतु ताम् अशनीमिव वेगेन पतन्तीमपि विक्रान्तां शरेण राम उरसि विदारयांचकार । सा पपात ममार च ।

पाठ ७.

अब आप परस्मैपदी प्रथम गणके धातुओं के वर्तमान और भविष्य के रूप स्वयं बना सकते हैं । संस्कृत में धातुओं के दस गण हैं । जिसमें पहिले गण के कई धातु दिए गये हैं । क्रमशः अन्य गणों के धातुओं के साथ आपका परिचय कर दिया जायगा । कई पाठों तक प्रथम गण के परस्मैपदी धातु ही देने हैं इस लिए इनके रूपों को आप ठीक स्मरण रखिएः—

ज्वर-रोगे । =(बुखार होना), १ गण-परस्मैपद ।

वर्तमान-कालः ।

प्र०पु०...ज्वरति	ज्वरतः	ज्वरन्ति ।
म०पु०...ज्वरसि	ज्वरथः	ज्वरथ ।
उ०पु०...ज्वरामि	ज्वरावः	ज्वरामः ।

भविष्य-कालः ।

प्र०पु०...ज्वरिष्यति	ज्वरिष्यतः	ज्वरिष्यन्ति ।
म०पु०...ज्वरिष्यसि	ज्वरिष्यथः	ज्वरिष्यथ ।
उ०पु०...ज्वरिष्यामि-	ज्वरिष्यावः	ज्वरिष्यामः ।

ज्वल्—दीप्तौ । = (जलना) १ गण परस्मैप० ।

वर्तमान-कालः ।

प्र०पु० ..ज्वलति	ज्वलतः	ज्वलन्ति ।
म०पु०...ज्वलसि	ज्वलथः	ज्वलथ ।
उ०पु०...ज्वलामि	ज्वलावः	ज्वलामः ।

भविष्यकालः

प्र०पु०...ज्वलिष्यति	ज्वलिष्यतः	ज्वलिष्यन्ति ।
म०पु० ..ज्वलिष्यसि	ज्वलिष्यथः	ज्वलिष्यथ ।
उ०पु०...ज्वलिष्यामि	ज्वलिष्यावः	ज्वलिष्यामः ।

... निम्न लिखित धातुओं के रूप पूर्ववत् होते हैं:—

गण १ ला। परस्मैपद।

१ तक्ष्—तनूकरणे।—(छीलना,—तक्षति, तक्षिष्यति)।

२ तन्द्र्—अवसादे मोहे च।—(थकना, मानसिक मोह होना)—तन्द्रति, तन्द्रिष्यति।

३ तप्—संतापे।—(तपना)—तपति, तप्स्यति। (इस धातु का 'तपिष्यति' नहीं होता। स्मरण रखिए।)

४ तर्ज्—भर्त्सने।—(निंदा करना, धमकाना)—तर्जति, तर्जिष्यति।

५ तुद्—व्यथने।—(दुःख होना—तुदति, तोत्स्यति। (इसका भविष्यकाल का रूप स्मरण रखने योग्य है।)

६ तुड्—तोडने अनादरे च।—(तोडना, आदर करना)—तुडति, तुडिष्यति।

७ तृप्—तुष्टौ।—(संतुष्ट होना)—तृपति, तृपिष्यति।

८ तृ (तर्)—प्लवण तरणयोः।—(तैरना, पार होना)—तरति, तरिष्यति। तरिष्यामि।

९ तेज्—निशाने पालने च।—(तेज करना, पालन करना)—तेजति, तेजिष्यति।

१० तोड्—अनादरे ।—(निरादर करना)—तोडति, तोडिष्यति ।

११ त्यज्—हानौ ।—(त्यागना)—त्यजति, त्यक्ष्यति । (इस धातु का रूप स्मरण रखने योग्य है)

१२ त्वक्ष्—तनूकरणे ।—(छीलना)—त्वक्षति, त्वक्षिष्यति ।

१३ दल्—विदारणे ।—(तोड़ना, फटना)—दलति, दलिष्यति ।

१४ दह्—भस्मीकरणे ।—(जलाना)—दहति धक्ष्यति ॥

(इस धातु का भविष्य का रूप स्मरण रहे)

१५ दा—लवने ।—(काटना)—दाति, दास्यति ।

१६ दृश् (पश्य) प्रेक्षणे ।—(देखना)—पश्यति, पश्यतः, पश्यन्ति ॥ द्रक्ष्यति, द्रक्ष्यतः, द्रक्ष्यन्ति ॥ (इस धातु के रूपस्मरण रखने योग्य हैं ।)

१७ दृह्—वृद्धौ ।—(बढ़ना)—दृंहति, दृंहिष्यति ।

१८ दृ (दर)—भये ।—(डरना)—दरति, दरिष्यति ।

१९ धुर्व्—हिंसायाम् ।—(हिंसा करना)—धुर्वति, धूर्विष्यति

२० धृ [धर]—धारणे ।—(धारण करना)—धरति, धरिष्यति ।

२१ ध्वन्—शब्दे ।—(शब्द करना)—ध्वनति, ध्वनिष्यति ।

२२ नट्—नृतौ ।—(नाचना, नाटक करना)—नटति, नटिष्यति ।

२३ नद्—अव्यक्ते शब्दे ।—(अस्पष्ट शब्द करना)—नदति, नदिष्यति ।

२४ नन्द्—समृद्धौ ।—(खुशी होना)—नन्दति, नन्दिष्यति ।

२५ नम्—प्रह्वत्वे शब्दे च ।—(नमन करना, शब्द करना)—नमति, नंस्यति । (इस धातु का भविष्य का रूप स्मरण रखना चाहिए ।)

२६ निन्द्—कुत्सायाम् ।—(निंदा करना)—निन्दति, निन्दिष्यति ।

२७ नी (नय्)—प्रापणे ।—(ले जाना)—नयति, नेष्यति ।

२८ पच्—पाके ।—(पकाना)—पचति, पक्ष्यति, पक्ष्यसि, पक्ष्यामि । (इसके भविष्य के रूप देखने योग्य हैं ।)

२९ पठ्—वाचने ।—(पढ़ना)—पठति, पठिष्यति ।

३० पत्—गतौ ।—(गिरना)—पतति, पतिष्यति ।

३१ पा–पाने। (पीना)—पिबति, पिबसि, पिबामि ॥
पास्यति, पास्यसि, पास्यामि ॥ (ये रूप स्मरण रखिए।)

वाक्य

१ त्वष्टा काष्ठं तक्षति।...तर्खान लकड़ी छीलता है।
२ विश्वामित्रः तपति।... विश्वामित्र तप करता है।
३ वानरौ तरतः।...दो बन्दर तैरते हैं
४ महिषाः तरन्ति।...भैंसे तैरते हैं।
५ स शस्त्रं तेजिष्यति।...वह शस्त्र तेज करेगा।
६ तौ त्यजतः।...वे दोनों फेंकते हैं।
७ अग्निः दहति।...आग जलती है।
८ बालकाः पश्यन्ति।...लड़के देखते हैं।
९ वयं द्रक्ष्यामः।...हम सब देखेंगे।
१० सूर्य एकाकी चरति।...सूर्य अकेला चलता है।
११ शृणु! कथं जलं नदति। सुन! किस प्रकार जल शब्द करता है।
१२ परमेश्वरं नमामि। ...परमेश्वर को नमन करता हूं।
१३ स तत्र नेष्यति। वह वहां ले जायगा।

१४ देवदत्तः पचति ।... ...देवदत्त पकाता है ।

१५ बालकः पठति । ... ...लड़का पढ़ता है ।

१६ मम पुत्रौ पठतः । ... ...मेरे दो बालक पढ़ते हैं

मनुष्यो वने वृक्षं तक्षतः । कः तत्र प्रातः काले सन्ध्योपासनं करोति । अहं नित्यं, नदी तीरं गत्वा तत्र सन्ध्योपासनां करोमि । इदानीं को नदीं तरिष्यति । विश्वामित्र-यज्ञदत्तौ तरिष्यतः । नहि । सर्वे मनुष्यास्तरिष्यन्ति । त्वं सँ किमर्थं त्यजसि । गृहे अग्निर्ज्वलति । गृहाद् बहिः अग्निर्नं ज्वलिष्यति । इदानीं त्वां को द्रक्ष्यति । सर्वेऽपि अत्र त्वां द्रक्ष्यन्ति । मनुष्याः पश्यन्ति । मनुष्यौ पश्यतः । यूयं पश्यथः । यः आगतिं सं एव गच्छतु । यज्ञमित्रो धर्मं त्यक्त्वा अधर्म्यं कर्म करोति । स चलति । अहं त्वया सह चलिष्यामि । नदी नदति । इदानीं नाटकस्य समयः । त्व आगच्छ इक्षुदण्डरसं पिब । स्वनगरं याहि । स कन्दान् पचति । तौ कन्दान् पचतः । ते सर्वेपि कन्दान् पचन्ति ।



पाठ ८।

शब्द।

भैक्ष्यचर्य—भिक्षा माँग कर भोजन करना
गार्हस्थ्य—गृहस्थाश्रम
स-दार—स्त्री समेत
अ-दार—स्त्री रहित
समधीत्य—उत्तम प्रकार से अध्ययन करके
धर्मवित्—धर्म जानने वाला
अक्षर—अविनाशी ब्रह्म
प्रशस्त—स्तुत्य
मोक्षिणः—मोक्षको जानेवाला
प्रधान—मुख्य
त्याग—दान
पुराण—सनातन
महाश्रम—महान आश्रम
प्राहुः—कहते हैं
द्विजातित्वं—द्विजपन
संयतं—संयमी
कृतकृत्य—जिसके कृत्य परिपूर्ण हो चुके हैं
ऊर्ध्वरेताः—जिसके वीर्य का पतन नहीं होता
प्रव्रजित्वा—संन्यास लेकर
स्वधाकारः—अन्नयज्ञः
रति—रमना
सेवितव्य—सेवन करने योग्य
पाल्यमान—पालने योग्य
अग्र्य— श्रेष्ठ

समास॥

१ सदारः—दारः सहित।
२ अदारः—न विद्यन्ते दाराः यस्य स अदारः।

३ संयतेन्द्रियः—संयतानि इन्द्रियाणि यस्य सः ।

४ कृतकृत्यः—कृतं कृत्यं येन सः ।

५ राजधर्मप्रधानाः—राज्ञः धर्मः राजधर्मः, राजधर्मः प्रधानः यत्र ते राजधर्मप्रधानाः ।

वाचनपाठः महाभारतम् ।

वानप्रस्थं भैक्ष्यचर्यं गार्हस्थ्यंच महाश्रमम् ।
ब्रह्मचर्याश्रमं प्राहुश्चतुर्थं ब्राह्मणैर्वृतम् ॥ १ ॥
जटा-धर-संस्कारं द्विजातित्व मवाप्यच ।
आधानादीनि कर्माणि प्राप्य वेदमधीत्य च ॥ २ ॥
सदारोवाऽप्यदारोवा आत्मवान्संयतेन्द्रियः ।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत्कृतकृत्यो गृहाश्रमात् ॥ ३ ॥
तत्रारण्यक शास्त्राणि समधीत्य सधर्मवित् ।
ऊर्ध्वरेताःप्रव्रजित्वा गच्छत्यक्षरसात्मताम् ॥ ४ ॥

(२) जटाधारण संस्कारं ब्रह्मचर्या रूपं कृत्वा द्विजातित्वं अवाप्य प्राप्य च आधानादीनि यज्ञ कर्माणि प्राप्य कृत्वा वेदं च अधीत्य, वेदस्य अध्ययनं कृत्वा (३) सदारः स्त्री युक्तः वा अदारः स्त्री रहितः वा आत्मवान् आत्मज्ञानवान् संयतेन्द्रियः वशी वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत् । गृहस्थाश्रमात् कृतकृत्यः भूत्वा, गृहस्थाश्रमस्य सर्वं कर्म यथायोग्यं कृत्वा । (४) तत्र वानप्रस्थाश्रमे आरण्यक शास्त्राणि समधीत्य सम्यक् अधीत्य धर्मवित् धर्मज्ञः सः पुरुषः ऊर्ध्वरेताः भूत्वा प्रव्रजित्वा अक्षरसात्मतां परमात्मसायुज्यतां गच्छति ।

चरितब्रह्मचर्यस्य ब्राह्मणस्य विशाम्पते ।
भैक्ष्यचर्या स्वधाकारः प्रशस्त इह मोक्षिणः ॥ ५ ॥

सत्यार्जवं चातिथिपूजनं च ।
धर्मस्तथार्थश्च रतिःस्वदारैः ॥
निषेवितव्यानि सुखानि लोके ।
ह्यस्मिन्परे चैव मत मतैतत् ॥ ६ ॥
सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधानाः ।
सर्वे वर्णाः पाल्यमाना भवन्ति ॥
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजन् ।
त्यागं धर्मं चाहुरग्र्यं पुराणम् ॥ ७॥

---

(५) हे विशांपते ! हे राजन् ! चरित ब्रह्मचर्यस्य मोक्षिणः मुमुक्षोः मनुष्यस्य इह भैक्ष्यचर्या एव स्वधाकारः प्रशस्तः ।

(६) सत्यं आर्जवं सरलता अतिथिपूजन, धर्मः धर्मानुष्ठानं, अर्थः द्रव्यार्जनं, स्वदारैः स्वकीयया धर्मपत्न्या सह रतिः एतानि सुखानि लोके निषेवितव्यानि । परे श्रेष्ठे हि अस्मिन्धर्मे धर्मविषये मम एतत् मतम् अस्ति ॥ (७) हे राजन् ! राज धर्मेषु सर्वः त्यागः । त्यागं धर्मं दानमयं धर्म पुराणं सनातनं अग्रय मुख्यंच आहुः ।

पाठ ९.

गण १ । परस्मैपद ।

पुष्-वृद्धौ-(पुष्ट होना)

वर्तमान कालः ।

सः पुषति ।	त्वं पुषसि ।	अहं पुषामि ।
तौ पुषतः ।	युवां पुषथः ।	आवां पुषावः ।
ते पुषन्ति ।	यूयं पुषथ ।	वयं पुषामः ।

भविष्य-काल

सः पुषिष्यति ।	त्वं पुषिष्यसि ।	अहं पुषिष्यामि ।
तौ पुषिष्यतः ।	युवां पुषिष्यथ ।	आवां पुषिष्यावः ।
ते पुषिष्यन्ति ।	यूयं पुषिष्यथ ।	वयं पुषिष्यामः ॥

धातु गण १ ला । परस्मैपद ।

फल—निष्पत्तौ ।—(फल उत्पन्न होना)—फलति, फलामि । फलिष्यति, फलिष्यामि ॥

२ फुल्ल-विकसने ।—(खुलना,फुलना)—फुल्लति,फुल्लामि फुल्लिष्यति, फुल्लिष्यामि ॥

३ बुक्क—भषणे ।—(भौंकना,बोलना)—बुक्कति,बुक्कामि । बुक्किष्यति, बुक्किष्यामि ॥

४ बुध् (बोध)-बोधने ।—(जानना) बोधति, बोधामि । बोधिष्यति, बोधिष्यामि ॥

५ वृह (वर्ह्)-वृद्धौ ।—(बढ़ना)-वर्हति, वर्हामि ।
वर्हिष्यति; वर्हिष्यामि ॥

६ वृंह्-वृद्धौ शब्दे च ।—(बढ़ना शब्द करना) वृंहति, वृंहा-
मि । वृंहिष्यति, वृंहिष्यामि ॥

७ भक्ष्-अदने ।—(खाना)—भक्षति, भक्षामि । भक्षिष्यति,
भक्षिष्यामि ॥

८ भज्-सेवायां ।—(सेवा करना) भजति, भजामि । भक्ष्यति
भक्ष्यामि ॥

९ भण्-शब्दे ।—(बोलना) भणति, भणामि । भणिष्यति,
भणिष्यामि ॥

१० भष्-भषणे, भखे ।—(अपमान करना, कुत्ते का भूंकना)
भषति, भषामि । भषिष्यति, भषिष्यामि ॥

११ भू-सतायाम् ।—(होना)—भवति, भविष्यति ॥

१२ भूष्-अलंकारे ।—(सजाना अलंकार डालना)-भूषति
भूषामि । भूषिष्यति, भूषिष्यामि ॥

१३ भृ(भर्)-भरणे ।—(भरना)-भरति, भरामि ।
भरिष्यति, भरिष्यामि ॥

१४ भ्रम्-चलने ।—(चलना)-भ्रमति, भ्रमामि । भ्रमिष्यति,
भ्रमिष्यामि ॥

१५ मण्ड्–भूष्यायाम् ।—(सुशोभित करना)-मण्डति, मण्डामि । मण्डिष्यति, मण्डिष्यामि ॥

१६ मथ्–विडोलने ।—(मथना, विलोना)-मथति मथामि । मथिष्यति, मथिष्यामि ॥

१७ मन्थ् विलोडने ।—(मन्थन करना)-मन्थति,मन्थिष्यति । मन्थामि, मन्थिष्यामि ॥

१८ मह्–पूजायाम् ।—(सम्मान करना))-महति महामि । महिष्यति महिष्यामि ॥

१६ मार्ग्–अन्वेषणे ।—(ढूंढना)-मार्गति मार्गामि । मार्गिष्यति, मार्गिष्यामि ॥

२० मुड् (मोड)–मर्दने ।—(मोड़ना तोडना)-मोडति मोडामि । मोडिष्यति मोडिष्यामि ॥

२१ मुण्ड्–खण्डने ।—(हजामत करना)-मुण्डति मुण्डामि मुण्डष्यति मुंडिष्यामि ॥

२२ मूर्छ्–मोहे.।—(बेहोश होना)-मूर्च्छति मूर्च्छामि ॥ मूर्च्छिष्यति, मूर्च्छिष्यामि ॥

२३ मूष्–स्तेये ।—(चोरी करना)मूषति मूषामि । मूषिष्यति मूषिष्यामि ॥

२४ म्लेच्छ्–अव्यक्ते शब्दे ।—(अशुद्ध बोलना)-म्लेच्छति म्लेच्छामि । म्लेच्छिष्यति म्लेच्छिष्यामि ॥

२५ यज्-पूजायाम् ।—(यज्ञ करना) यजति यजामि

यक्ष्यति यक्ष्यामि ॥(इसका भविष्य काल स्मरण रखने योग्य है)

वाक्य

१ स म्लेक्षति । ...वह अशुद्ध बोलता है।

२ त्वं न म्लेक्षसि । ...तू अशुद्ध नहीं बोलता।

३ तौ मूषतः । ...वे दोनों चोरी करते हैं।

४ युवां न मूषथः । ...तुम दोनों चोरी नहीं करते।

५ आवां यजावः ...हम दोनों यज्ञ करते हैं।

६ रामलक्ष्मणौ यजतः ...राम और लक्ष्मण हवन करते हैं।

८ तत्र स्तेना मूषन्ति । ...वहां बहुत चोर चोरी करते हैं।

९ स मूर्च्छति । ...वह बेहोश होता है।

१० युवां न मूर्च्छथः ...तुम दोनों बेहोश नहीं होते।

११ रात्रौ ते मूर्च्छन्ति ...रात्री में वे बेहोश होते हैं।

१२ अहं त्वां मुण्डामि । ...मैं तुझे मूडता हूं।

१३ तौ नापितौ मुण्डतः...वे दोनों नाई हजामत बना रहे हैं।

१४ तत्र त्रयोऽपि नापिताः...वहां तीनों नाई हजामत बना
मुण्डन्ति ।... ... ...रहे हैं।

१५ स तत्र काष्ठं मोटति ...वह वहां लकड़ी तोड़ता है।

१६ अहमश्वं मार्गामि । ...मैं घोड़े को ढूंढता हूं।

१७ स महिष्यति । ...वह सम्मानित होगा।

१८ त्वं दधिमन्थसि किम् । ...क्या तू दही मथता है।

१९ नहि, अहं जलमेव मथामि। नहीं। मैं जलही मथता हूं।

२० स स्वकीयं शरीरं मण्डति।वह अपना शरीर सुशोभित करता है।

२१ तौ अश्वं मण्डतः ...वे दोनों घोड़े को सुशोभित करते हैं।

वाक्य

अहं भ्रमामि। स जलं कुम्भेन भरति। त्वं शरीरं भूषसि। भ्रमतः। ते सर्वेऽपि शिष्याः गुरवश्च तत्र पर्वते भ्रमन्ति। इदानीं नैव भ्रमामि। सूर्यस्य प्रकाशः भवति। स किं भणति त्वं किं न भणसि। तौ ईश्वरं भजतः। आवां न भजावः सर्वे ईश्वरं भजन्ति किम्? त्वं मां कदा भूषयिष्यसि? अ अश्वौ भूषयिष्यावः। त्वं तं पद्यं भणसि। स वृक्ष इव

फलति । ते वृक्षा इदानी—किमर्थं न फलन्ति । तौ वृक्षौ इदानीमेव फलतः । वृक्षः फुल्लति । वृक्षौ फुल्लतः । उद्याने सायङ्काले सर्वे वृक्षाः फुल्लन्ति । अहं बोधामि । त्वं बोधसि किम् । कथ स न बोधति । वृक्षः वहति । अश्वौ वहतः । काकः फलं भक्षति काकौ फले भक्षतः । काकाः फलानि भक्षन्ति । अश्वाः जलं पिबन्ति । अश्वौ जलं पाययतः । सर्वेजनाः इदानीमेव जलं पिबन्ति । तव पुत्राः बोधन्ति किम् । तो बोधतः । ते सर्वे न बोधन्ति । अहं श्वः यक्ष्यामि । ते परश्वो यक्ष्यन्ति । युवां कदा यक्ष्यथः ।

पाठ १०

वधः—हनन	पुंगव—श्रेष्ठ
तोपितः—संतुष्ट	त्वरमाण—शीघ्रता करने वाला
गाधिज—गाधि का पुत्र विश्वामित्र	यत्तौ—तैयार हुए हुए
प्रसह्य—हमला करके	अभ्यधावतां—दौड़ने लगे
वशीकृत्य—अपने वश में करके	क्रुधः—क्रोधी हुआ हुआ
न्यवेदयत्—बताया	भास्वरं—तेजस्वी
स्वकं—अपना	मानवं—मनुसंबन्धी
मुहूर्तं—घड़ी भर	चिक्षेप—फेंका
	भुवि—पृथ्वी पर

ऊचतुः—बोले
करवाव—करें
धनूरत्न—धनुष्य रत्न
निर्जनं—मनुष्य रहित
सहस्राक्षः, देवराजः, शचीपतिः—इन्द्र
दुर्मेधा—दुष्टबुद्धि
विषण्ण—खिन्न
वदन—मूंह
अत्यन्त—अतिशय
प्रयच्छ—देना
समन्वित—युक्त
उरग—सर्प, जातिविशेष
जि (जय)—जय पाना
सग्रहणं—स्वीकार
पुनर्वसु—एक नक्षत्र का नाम
शशी—चन्द्रमा
प्रार्थयांचक्रतुः—प्रार्थना की
षड्रात्रं—छै रात्री
रक्षतां—रक्षा करे

माया—कपट
कुर्वाण—करने वाला
उरसि—छाती में
विद्धः—बाणों से जखमी
निरस्त—पराजित
क्षिप्त—फेंका हुआ
निर्मूलयांचकार—निर्मूल किया
शासनं—आज्ञा
धर्मिष्ठः—धार्मिक
आरोपणं—धनुषकी डोरीचढ़ाना
काकुत्स्थ—राम लक्ष्मण
वेषधर—स्वांग धरा कर
समाहित—शांत
संग—स्त्री सम्बन्ध
कुतूहलं—विलक्षणता
वृत्तसंपन्न—सब वृत्तान्त जाना हुआ
दुर्वृत्त—दुराचारी
दुर्मतिः—दुष्टबुद्धि
अकर्तव्य—न करने योग्य
अदृश्य—गुप्त

भस्म—राख	शप्तवान्—शाप दिया
वचः—भाषण	पूत—पवित्र
विरराज—सुशोभित हुआ	तारय—तेराओ
समास्थाय—धारण करके	आघ्रातवान्—सूंघलिया
	पुरस्कृत्य—आगे करके

समास

१ ताटकावधः—ताटकायाः वधः ।

२ परमास्त्रेण—परमेण अस्त्रेण ।

३ राक्षसविहिनाः—राक्षसैः विहीना ।

४ शचीपतिः—शच्याः पतिः ।

५ सुरश्रेष्ठः—सुरेषु श्रेष्ठः ।

६ विषण्णवदनः—विषण्णं वदनं यस्य ।

७ निर्जनं—निर्गताः जनाः यस्मात् तत् ।

संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणे बालकाण्डम्



तृतीयः खण्डः ॥

ताडकावधेन तोषितो मुनिवरो गाधिसुतस्तदा रामस्य मस्तकमाघ्रातवान्। उवाच च। राजपुत्र प्रीतोऽस्मि तेऽत्यन्तम्। प्रयच्छामि चास्त्राणि दिव्यानि। तैः समन्वितस्त्वं देवानसुरान् गन्धर्वोनुरगान्वापि प्रसह्य वशीकृत्य जयिष्यसि। इति। एवमुक्त्वा स विप्रो येषां सर्वसंग्रहणं देवतैरपि दुर्लभं तान्येवास्त्राणि राघवाय न्यवेदयत्।

ततः परमप्रीतो महामुनिः सलक्ष्मणं रामं गृहीत्वा स्वकं सिद्धाश्रमं प्रविवेश। तदा स पुनर्वसु· समन्वितः शशीव विरराज। ततो मुहूर्तं विश्रान्तौ रघुनन्दनौ प्रार्थयांचक्रतुः। अद्यैव मुनिपुङ्गवो यज्ञदीक्षां प्रविशतु। इति सर्वे मुनयः एवं त्वरमाणौ रघुनन्दनौ प्रशशंसुः। ऊचुश्च। अद्यप्रभृति षड्रात्रं रक्षतां राघवौ युवाम्। इति। तावपि यत्तौ षड् अहोरात्रं तपोवनम्। अरक्षताम्। षष्ठायां रात्रौ मायां विकुर्वाणौ राक्षसौ अभ्यधावताम्। परमक्रुद्धस्तु राघवो मारीचस्योरसि भास्वरं मानवमस्त्रं चिक्षेप। मारीचोऽपि तेन परमास्त्रेण सागरे क्षिप्तः। मारीचं निरस्तं दृष्ट्वा सुबाहोरुरस्यापि स आग्नेयमस्त्रं चिक्षेप।

सोऽपि विद्धो भुवि पपात । वायव्येन चास्त्रेण शेषान् । राक्षसान् निर्मूलयांचकार । एवं यज्ञः समाप्तः । दिशश्च राक्षसविहीना आसन् । विश्वामित्रोऽपि रामचन्द्रमब्रवीत् । कृतार्थोऽस्मि महाबाहो । सिद्धाश्रममिदं सत्यं सार्थकं कृतं त्वया । इति ।

ततो राघवौ पुनर् मुनिश्रेष्ठं ऊचतुः । किम् अपरं शासनं करवाव । आज्ञापय । इति । तच्च श्रुत्वा सर्व एव मुनयो विश्वामित्रं पुरस्कृत्य राममब्रुवन् । नरश्रेष्ठ । मिथिलराजस्य जनकस्य गृहे परमधर्मिष्ठो यज्ञो भविष्यति । यत्रास्माभिः सह गमिष्यसि । अद्भुतं हि धनूरत्नं तत्र द्रष्टुमर्हसि । न तस्य देवा न सुरा न राक्षसा न गन्धर्वा आरोपणं कर्तुं शक्ताः । कथं पुनर्मानुषाः । इति । ततो मुनिवरो मुनिसंघैः काकुत्स्थेन च सह मिथिलां जगाम । तत्रोपवने मिथिलायाः समीपे निर्जनमेकं आश्रमं दृष्ट्वा राघवः पप्रच्छ । कस्यायं पूर्वं आश्रमः । इति । अत्र विश्वामित्र उवाच । अत्र पुराऽहल्यासहितो महात्मा गौतमस्तप आतिष्ठत् । तस्यान्तरं विदित्वा सहस्राक्षः शचीपतिर्वेषधरो मुनिरभवत् । अहल्यां चाब्रवीत् । सु-समाहिते त्वया सह सङ्गमिच्छामि इति । ततो मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय सादुर्मेधा देवराज-कुतूहलाद् रतिं चकार । कृतार्थेनान्तरात्मना च पश्चात् सुरश्रेष्ठम् अब्रवीत् । कृतार्थास्मि देवेश । शीघ्रमितो गच्छ । आत्मानं मां च सर्वथा गौतमाद्

रक्ष । इति एवं गौतमम् प्रतिशङ्कितः सहस्राक्षो गौतममेव प्रविशन्तं ददर्श । विषण्णवदनश्चाभवत् ॥

गृहसम्पन्नस्तु मुनिर्गौतमः सहस्राक्षं दुर्वृत्तं दृष्ट्वाऽब्रवीत् यस्माद् मत्ते, मम रूपं समास्थायैव त्वम् इदम् अकर्तव्यं कृतवान् असि तस्मात्त्वं विफलो नष्टेन्द्रियो भविष्यसि खलु। इति । एवं गौतमेन शापितः शक्रः क्षणाद् विफलो विनष्टजननेन्द्रियो ऽभवत् । भार्यामपि ततो गौतमः शप्तवान् । यथा वर्षसहस्राणि त्वम् इहात्रस्या वातभक्षा भस्मशायिनी च निवसिष्यसि । यदा च दशरथात्मजो राम एतद् घोरं वनं आगमिष्यति तदा पूता भविष्यसि । इति । अयमस्य निर्जनस्याश्रमस्य वृत्तान्तः । इति ।

एवं कथयित्वा विश्वामित्रो राममवदत् तस्माद् आगच्छ राम एनम् आश्रमम् । तारय च देवरूपिणीम् । अहल्याम् । इति । एवं विश्वामित्रस्य वचः श्रुत्वा राघवः स लक्ष्मण आश्रमं प्रविवेश ।

पाठ ११।

गण १ ला। परस्मैपद।

प्रथम गण परस्मैपद के धातुओं के वर्तमान और भविष्य के रूप अब पाठक स्वयं बना सकते हैं। वर्तमान और भविष्य के प्रत्यय नीचे दिए हैं।

वर्तमान काल के लिये प्रत्यय।

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	......ति	...तः	...न्ति।
म० पु०	......सि	...थः	...थ।
उ० पु०	......मि	...वः	...म।

भविष्यकाल के लिये प्रत्यय।

प्र० पु०	......स्यति	...स्यतिः	स्यन्ति
म० पु०	......स्यसि	...स्यथः	स्यथ।
उ० पु०	......स्यामि	...स्यावः	स्यामः।

याच्–याचायाम्।–(मांगना)–प्रथम गण

याचति	याचत.	याचन्ति।
याचसि	याचथः	याचथ।
याचामि	याचावः	याचामः।

परस्मैपद । भविष्यकाल ।

याचिष्यति	याचिष्यतः	याचिष्यन्ति ।
याचिष्यसि	याचिष्यथः	याचिष्यथ ।
याचिष्यामि	याचिष्यावः	याचिष्यामः ।

भविष्यकाल के प्रत्यय लगने के पूर्व धातु के अंत में 'इ' आती है। और 'इ' के पश्चात् आने वाले 'स' का 'ष' होता है। इसलिए 'याचिष्यामि' रूप बनता है। 'पा' धातु का 'पास्यामि' रूप होता है क्योंकि वहां 'इ' नहीं है इस लिए 'स्यामि' का 'ष्यामि' नहीं हुआ।

जिन प्रत्ययों के प्रारम्भ में 'म अथवा व' होता है, उन प्रत्ययों के पूर्व का 'अ' दीर्घ होता है अर्थात् उसका 'आ' बनता है। जैसा-याचामि, याचावः; याचिष्यामि।

प्रथम गण वर्तमान काल के प्रत्यय लगने के पूर्व धातु के और प्रत्यय के बीच में प्रथम गण का चिन्ह 'अ' लगता है। जैसाः—

रक्ष्—पालने।— (पालना) गण १ ला। परस्मैपद।

रक्ष्+अ+ति=रक्षति
रक्ष्+अ+तः=रक्षतः } प्रथम पुरुष
रक्ष्+अ+न्ति=रक्षन्ति

रक्ष् + अ + सि = रक्षसि
रक्ष् + अ + थः = रक्षथः } मध्यम पुरुष
रक्ष् + अ + थ = रक्षथ

रक्ष् + आ + मि = रक्षामि
रक्ष् + आ + वः = रक्षावः } उत्तम पुरुष
रक्ष् + आ + मः = रक्षामः

'मि, वः, मः' ये प्रत्यय लगने से पूर्व 'अ' का 'आ' हुआ है इसी प्रकार

रक्ष् + इ + स्यति = रक्षिष्यति।

रक्ष् + इ + स्यसि = रक्षिष्यसि।

रक्ष् + इ + स्यामि = रक्षिष्यामि।

इस में 'स्य' का 'ष्य' इकार के कारण हुआ है। मि के पूर्व अकार का आकार उक्त नियम के अनुसार ही हुआ है।

अब अगले पाठ में भूतकाल के प्रत्यय देने हैं इस लिये पाठकों को उचित है, कि वे इन रूपों को ठीक स्मरण रखें।

धातु। गण १ ला परस्मैपद।

१ रट्–परिभाषे।–(पुकारना)–रटति, रटिष्यति।

२ रण्–शब्दे।–(बोलना)–रणति, रणिष्यति,।

३ रद्–विलेखने।–(खुरचना) रदति, रदिष्यति।

४ रप्–व्यक्तायां वाचि ।–(बोलना)–रपति, रपिष्यति ।

५ रह्–त्यागे ।–(त्यागना)–रहति, रहिष्यति ।

६ रंह्–गतौ ।–(जाना)–रंहति, रंहिष्यति ।

७ रुह् (रोह्)–बीजजन्मनि ।–(बीज से वृक्ष होना)–
रोहति, रोहामि । रोक्ष्यति ।
रोक्ष्यामि ॥ इस धातु के
भविष्यकाल में स्य के पूर्व
इ नहीं होती)

८ लग्–संगे ।–(लगना)–लगति, लगिष्यति ।

९ लज्–भर्जने ।–(भूनना)–लजति, लजिष्यति ।

१० लड्–विलासे ।–(खेलना)–लडति, लडिष्यति ।

११ लप्–व्यक्तायां वाचि । – (बोलना)–लपति लपिष्यति ।

१२ लल्–विलासे ।–(खेलना) ललति ललिष्यति ॥

१३ लस्–क्रीडने ।–(खेलना) लसति लसिष्यति ।

१४ लाज्–भर्त्सने भर्जने च– ।–(दोषदेना, भूनना)– लाजति

१५ लुट्–लोट्–विलोडने ।–(लुटकना)–लोटति, लोटिष्यति

१६ लुण्ठ्–स्तेये ।–(चोरना,डाका मारना) लुण्ठति लुण्ठिष्यति ।

१७ लुभ् (लोभ्)-गार्ध्ये ।—(लोभ करना)—लोभति, लोभिष्यति ।

१८ वच्-परिभाषे ।—(बोलना) वचति, वक्ष्यति । (इस धातु में भविष्य में इ नहीं लगतो)

१९ वञ्च्—गतौ ।—(जाना)-वंचति, वंचिष्यति ।

२० वद्-व्यक्तायां वाचि ।—(बोलना)-वदति, वदिष्यति ।

२१ वन्-शब्दे संभक्तौ च ।—(बोलना)-सम्मान करना, सहाय करना । -वनति, वनिष्यति ।

२२ वप्-बीजसंताने ।—(बीज बोना)—वपति, वप्स्यति । (इस धातु के लिये इ नहीं लगतो ।)

२३ वम्-उद्गिरणे ।-(वमन-कय-करना)-वमति, वमिष्यति

२४ वस्-निवासे ।—(रहना)-वसति, वत्स्यति, वत्स्यामि । वत्स्यसि । (इस धातु के भविष्य के रूप इकार के बिना होकर स के स्थान पर तो होता है)

२५ वह्-प्रापणे ।—(लेजाना)—वहति, वहसि, वहामि वक्ष्यति, वक्ष्यसि, वक्ष्यामि ॥ (इस धातु के भविष्यकाल के रूप स्मरण रखिए

२६ वाछ्-वांछायाम् ।——(इच्छा करना)—वांछति, वांछसि, वांछामि । वांछिष्यति वांछिष्यसि, वांछिष्यामि ॥

२७ वृष् (वर्ष्)-सेचने ।(बरसना)—वर्षति, वर्षिष्यति ।

२८ व्रज्-गतौ ।—(जाना)—व्रजति, व्रजिष्यति ।

वाक्य ।

१ आवां व्रजावः ।...	हम दोनों जाते हैं ।
२ मेघो वर्षति ।...	बादल बरसता है ।
३ त्वं किं वांछसि ?...	तू क्या चाहता है ?
४ बलीवर्दो रथं वहति ।...	बैल गाड़ी ले जाता है ।
५ युवां कुत्र वसथः ?...	तुम दोनों कहां रहते हो

स अन्नं वमति । तौ वपतः । ते वहन्ति । वयं वांछामः । तौ वदिष्यतः । ते वदन्ति । त्वं किं वदसि । स अतीव लोभति । वृक्षा रोहन्ति । किम् उद्याने वृक्षा न रोहन्ति । पर्वते बहवो वृक्षा रोहन्ति । ते सर्वेऽपि पाटलिपुत्र नामके नगरे वत्स्यन्ति । यूयं कुत्र वत्स्यथ । वयं वाराणसी क्षेत्रे वत्स्यामः । बलीवर्दा रथान् वहन्ति । बलीवर्दौ रथौ वहतः । पुत्राः वदन्ति । पुत्रौ वदतः । स वांछति । तौ वांछतः । ते वांछन्ति । अन्नं सर्वे

जना धावन्ति। इमौ द्वौ मनुष्यौ जलं वांछतः। अहं वदिष्यामि आवां वदिष्यावः। वयं वदिष्यामः। सर्वे वदिष्यन्ति। यूयं किमर्थं न वदथ ?

पाठ १२.

नक्रः—मगर
रक्ष्यः—रक्षण करने योग्य
जेयः—जीतने योग्य
चारः—गुप्त दूत, खुफिया पुलीस
गुल्म—सैनिकों के छोटे समूह
उपवनं } —बाग
उद्यानं }
क्षुत्—भूख
पिपासा—प्यास
श्रमः—कष्ट
क्षमः—सहन करने वाला
आपणः—बाजार
विवादः—झगड़ा
अभिगुप्तिः } —रक्षा
गुप्ति }
भक्तिः—विभाग, भक्ति
आकरः—खान
तरः—नदी आदि पर से उतार
स्वाप्त—अपने सम्बन्धी
घोषः—गौओं के समूह, अन-धर्ता
शाखानगरं—नगर के पास के स्थान,
गुप्त—सुरक्षित
सान्त्वयित्वा—शांति दिलाकर
सस्यं—धान्य
विस्रावयेत्—खोल दे (पानी का बंध)
अविश्राव्य—न खोलने योग्य
प्रगंडी—बाहर की दीवार

आकाश जननी—दिवारों में सुराख जो कीले के दिवारों में होते हैं
झख—मछली
विश्वासयेत्—विश्वास दिलाया जाय
न्यसेत—रखे
दुर्गः—किला
सन्धिः—सलाह, सुरंग
प्रणिधिः—गुप्त दूत
जड—मूढ
अन्ध—अन्धा
प्रहित—भेजा हुआ
पर—दूसरा, शत्रु
वर्जनीय—त्यागने योग्य
बलिः—कर
षड्भागः—छठा भाग
वसु—पैसा
बहु अल्पं (बहल्पं)—बहुत अथवा थोड़ा
लवणं—समुद्र, नमक
शुल्कं—कर
नागबलं—हाथियों का सैन्य
अभीसंश्रयेत्—आश्रय करे
उत्थापयेत्—उठावें
प्रवेशयेत्—प्रवेश करावे
धनिन्—धनिक
बलमुख्य—सैन्य के मुखिया
संक्रमः—नदी पर का पुल
अवसादयेत—गिरावे
दूषयेत्—जहरिला बनावे
चैत्य वृक्षः—देवता के मंदिर के पास के वृक्ष
परिखा—किले के चारों ओर का खंदक,
स्थाणुः—खंभा

वाचन पाठः । महाभारतम् ।

यु० उ० कथं रक्ष्यो जनपदः कथं जेयाश्च शत्रवः ।
कथं चारं प्रयुंजीत वर्णान्विश्वासयेत्कथम् ॥१॥

भी० उ० आत्मा जेयः सदा राज्ञा ततो जेयाश्च शत्रवः ।
न्यसेत गुल्मान्दुर्गेषु सन्धौ च कुरुनन्दन ॥२॥
नगरोपवने चैव पुरोद्यानेषु चैव ह ॥ ३ ॥

प्रणिधींश्च ततः कुर्याज्जडांध बधिराकृतीन् ।
पुंसः परीक्षितान्प्राज्ञान्क्षुत्पिपासाश्रमक्षमान् ॥ ४ ॥

चारांश्च विद्यात्प्रहितान्परेण भरतर्षभ ।
आपणेषु विहारेषु समाजेषु च भिक्षुषु ॥५॥

न च वश्यो भवेदस्य नृपो यश्चाति वीर्यवान् ।
राष्ट्रं च पीडयेत्तस्य शस्त्राग्निविषमूर्छनैः ॥ ६ ॥

---

(१) जनपदः देशः कथं रक्ष्यः रक्षणीयः । शत्रवः च कथं जेयाः जेतव्याः । चारं गुप्तदूतं कथं प्रयुंजीत । वर्णान् कथं विश्वासयेत् । (२) प्रथमं राज्ञा सदा आत्मा एव जेयः । ततः तदनन्तरं शत्रवः जेयाः । गुल्मान् सैनिक समूहान् दुर्गेषु न्यसेत । (४) ततः जड अन्धबधिरवत् आकृतीन् प्रणिधीन् गुप्तदूतान् कुर्यात् । (५) परेण शत्रुणा प्रहितान् प्रेषितान् चारान् गुप्तचरान् विद्यात् विजानीयात् । (६) यः अतिवीर्यवान् नृपः राजा अस्ति सः अस्य वश्यः न भवेत् । शस्त्र-अग्नि-विष-

अमात्य वल्लभानांच विवादा तस्य कारयेत् ।
वर्जनीय सदायुद्ध राज्य कामेन धीमता ॥ ७ ॥
आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन ।
सपड्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये ॥ ८ ॥
दशधर्मगतेभ्यो यद्वसु बहल्प मेव च ।
तन्नाददीत महसा पौराणां रक्षणार्थंव ॥ ९ ॥
यथा पुत्रस्तथा पौरा द्रष्टव्यास्ते न संशयः ।
भक्तिश्चैषा न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते ॥ १० ॥
श्रोतुं चैवन्यसेद्राजा प्राज्ञान्सर्वार्थदर्शिन ।
व्यवहारेषु सतत तत्र राज्य प्रतिष्ठित ॥ ११ ॥
आकरे लवणे शुल्के तरे नागबले तथा ।
न्यसेदमात्यान्नृपतिः स्वाप्तान्वा पुरुषान्हितान् ॥ १२ ॥
यदा तु पीडितोराजा भवेद्राज्ञा बलीयसा ।
तदाऽभिसंश्रयेद्दुर्गं बुद्धिमान्पृथिवीपतिः ॥ १३ ॥

मूर्छनैः तस्य राष्ट्रं पीडयेत् ॥ (७) तस्य शत्रोः अमात्यवल्लभानां परस्पर विवादान् कारयेत् ॥

(८) प्राज्ञः राजा तासां प्रजानां अभिगुप्तये रक्षणाय षड्भाग षष्ठ भागं बलिं कर आददीत। (१०) यथा पुत्राः स्वकीया बालका द्रष्टव्याः तथैव पौराः नागरिका जना अपि द्रष्टव्याः। अत्र संशयः न कार्यः ॥ (१३) यदा तु राजा बलीयसा बलयुक्तेन राजा पीडितः त्रस्तः भवेत् तदा बुद्धिमान् पृथिवीपतिः दुर्गं अभि-सश्रयेत् ॥

घोषाङ्यसेत मार्गेषु ग्रामानुत्थापयेदपि।
प्रवेशयेच्चतान्सर्वान् शाखानगरकेष्वपि ॥ १४ ॥
येगुप्ताश्चैव दुर्गाश्च देशास्तेषु प्रवेशयेत्।
धनिनोबलमुख्यांश्च सांतयित्वा पुनः पुनः ॥ १५ ॥
क्षेत्रस्थेषु च सस्येषु शत्रोरुप जयेन्नरात्।
विनाशयेद्वा तत्सर्व बलेनाथस्वकेनवा ॥ १६ ॥
नदी मार्गेषु च तथा संक्रमानव साद्येत्।
जलं विस्नावयेत्सर्वमविस्राव्यं च दूषयेत् ॥ १७ ॥
दुर्गाणां शोभितो राजा मूलच्छेदं प्रकारयेत।
सर्वेषां क्षुद्र वृक्षाणां चैत्य-वृक्षान्विर्जयेत ॥ १८ ॥
प्रगंडी कारयेत्सम्य गाकाशजननीस्सदा।
आपूरयेच्च परिखां स्थाणु नक्रझषाकुलाम ॥ १९ ॥

---

(१४) मार्गेषु घोषान् न्यसेत। ग्रामान् अपि उत्थापयेद् तान् सर्वान् उत्थापितान् ग्रामान् शाखानगरकेषु प्रवेशयेत। (१५) अथवा ये गुप्ता रक्षिताः दुर्गाः सन्ति गुप्ता देशा वा तेषु दुर्गेषु देशेषु वा तान् प्रवेशयेत्॥ धनिनः धनिकान् बलमुख्यान् सैन्यमुख्यान् पुनः पुनः सान्त्वयित्वा ॥ (१६) क्षेत्रस्थेषु सस्येषु धान्येषु शत्रोः नरात् उपजयेत्। अथवा तत्सर्वं स्वकेन बलेन विनाशयेत् ॥

समास

१ क्षुत्पिपासाश्रमक्षमान्—क्षुत् च पिपासा च श्रमः च । तान् क्षमन्ते सहन्ते ।

२ शस्त्राग्निविषमूर्छनैः—शस्त्रं च आग्निश्च विषं च मूर्छनं च तैः ।

३ सर्वार्थदर्शिनः—सर्वान् अर्थान् पश्यति इति ।

४ नृपतिः—नराणां पतिः ।

५ पृथिवीपतिः—पृथिव्याः पतिः ।

६ स्थाणुनक्रग्रावाकुलाम्—स्थाणवः च नक्राः च ग्रावाः च ते स्थाणुनक्रग्रावाः । तैः आकुलाम् ॥

पाठ १३.

भूतकाल

प्रथम गण । परस्मैपद ।

धातु के पूर्व 'अ' लगा कर भूतकाल के प्रत्यय लगाने से भूतकाल बनता है । जैसाः—बुध—जानना । के रूपः—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अबोधत्	अबोधताम्	अबोधन्
म० पु०	अबोधः	अबोधतम्	अबोधत
उ० पु०	अबोधम्	अबोधाव	अबोधाम

नी—लेजाना ।

प्र० पु०	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
म० पु०	अनयः	अनयतम्	अनयत
उ० पु०	अनयम्	अनयाव	अनयाम

भू—होना।

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

पच—पकाना ।

प्र० पु०	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
म० पु०	अपचः	अपचतम्	अपचत
उ० पु०	अपचम्	अपचाव	अपचाम

पत्—गिरना ।

प्र० पु०	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
म० पु०	अपतः	अपततम्	अपतत
उ० पु०	अपतम्	अपताव	अपताम

इन रूपों को देखने से भूतकाल के रूप आप बना सकते हैं।

धातु । प्रथम गण ।परस्मैपद ।

१ सृ [सर्]गतौ-(हिलना) —सरति, सरिष्यति
अमरत्, असरम् ।

२ स्खल्–संचलन ।–(ठोकर लगना)—स्खलित, स्खलिष्यति
३ स्तन् शब्दे ।–(गड़ गड़ाना)—स्तनति, स्तनिष्यति, अस्तनत् । अस्तनम् ।
४ स्था [तिष्ठ]–गतिनिवृत्तौ ।–(ठहरना) तिष्ठति, तिष्ठसि, स्थास्यति, स्थास्यसि, स्थास्यामि ।
अतिष्ठत् । अतिष्ठः, अतिष्ठम् ॥
५ स्मृ [स्मर्]–चिन्तायाम् ।–(स्मरण करना)—स्मरति स्मरामि । स्मरिष्यति, स्मरिष्यामि ।
अस्मरत्, अस्मरः, अस्मरम् ।
६ हस–हंसने ।–(हसना)—हसति । हसिष्यति । अहसत्, अहसः, अहसम् ।
७ हृ [हर्]–हरणे ।–(हरण करना) । हरति, हरसि हरामि । हरिष्यति, हरिष्यामि ।
अहरत्, अहरः, अहरम् ।
८ ह्लस्–शब्दे ।–(बोलना)-ह्लसति, ह्लसिष्यति, अह्लसत् ।

वाक्य ।

१ स दूरं सरति ।... ....वह दूर सरकता है ।
२ अहं तत्राऽस्खलम् ।......मुझे वहां ठोकर लगी ।
३ मेघः स्तनिष्यति ।.........बादल गरजेगा ।

४ अहं तत्राऽतिष्ठम् ।…… मैं वहां खड़ा था।

५ तौ तत्राऽतिष्ठताम् ।……वे दो वहां खड़े थे।

६ वयं अत्र तिष्ठामः ।……हम यहां खड़े रहते हैं।

७ त्वं तत्काव्यं स्मरसि किम् । क्या तू उस काव्य को याद करता है ?

८ अहं न स्मरामि ।…… मुझे याद तक नहीं।

९ तौ स्मरतः ।…… …वे दोनों स्मरते हैं।

१० स किमर्थं हसति ।……वह किस लिये हंसता है ?

११ चौरो धनं हरति ।…… …चोर धन हरता है।



कृष्णशर्मा अकणत् । विष्णुशर्मा बलीवर्दं तत्राऽनयत् । वृक्षे पक्षिणोऽकूजन् । अकूजन् पक्षिणस्तत्र । स बालः किमर्थं क्रन्दति । बालाः अक्रीडन् । सर्वे विद्यार्थिनोऽरघनगराद्बहिः अक्रीडन् अहं तदन्न नाऽखादम् । अहं नाभवम् । कस्तत्र खेलति । सोऽगदत् । अहमगदम् । स बालोऽखनत् । कोऽखनत् तत्र । मम पुस्तकं रामः कुत्र अगृहत् । मृगः चरति । चरति तत्र मृगः । अचरत् तत्र मृगः । अचलत् स वृक्षः । स मन्त्रमजपत् । अहं नाऽजपं मंत्रम् । स जल्पिष्यति । त्वं अजल्पः ।

आत्मनेपद ।

कई धातु परस्मैपद में होते हैं, कई आत्मनेपद में होते हैं और कई ऐसे होते हैं कि जिनके दोनों प्रकार के रूप होते हैं, जिनको उभयपद कहते हैं। परस्मैपद वाले प्रथम गण के धातुओं के साथ आपका परिचय हुआ है, अब आत्मनेपद वाले धातुओं के साथ परिचय करना है।

प्रथम गण । आत्मनेपद ।

वर्तमानकाल

कत्थ्—श्लाघायाम् ।—(स्तुति करना, घमंड करना)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कत्थते	कत्थेते	कत्थन्ते
म० पु०	कत्थसे	कत्थेथे	कत्थध्वे
उ० पु०	कत्थे	कत्थावहे	कत्थामहे ।

बुध्—बोधने ।—(जानना)

प्र० पु०	बोधते	बोधेते	बोधन्ते ।
म० पु०	बोधसे	बोधेथे	बोधध्वे ।
उ० पु०	बोधे	बोधावहे	बोधामहे ।

एध् वृद्धौ ।—(बढ़ना)

प्र० पु०	एधते	एधेते	एधन्ते ।
म० पु०	एधसे	एधेथे	एधध्वे ।
उ० पु०	एधे	एधावहे	एधामहे ।

*पच्–पाके ।—(पकाना)

प्र० पु०	पचते	पचेते	पचन्ते ।
म० पु०	पचसे	पचेथे	पचध्वे ।
उ० पु०	पचे	पचावहे	पचामहे।

प्रथम गण । आत्मनेपद ।

१ अंक्–लक्षणे ।—(चिन्ह करना)—अंकते, अंकसे, अंके ।

२ अंह्–गतौ ।—(जाना)— अंहते, अंहसे, अंहे ।

३ ईक्ष्–दर्शने ।—(देखना)—ईक्षते, ईक्षसे,ईक्षे ।

४ ऊह्–वितर्के ।—(तर्क करना)—ऊहते, ऊहसे, ऊहे ।

५ एज्–दीप्तौ— (प्रकाशना)—एजते, एजसे, एजे ।

६ कम्प्–कम्पने ।—(कापना)—कम्पते, कम्पसे, कम्पे ।

७ कव्–वर्णने ।—(वर्णन करना)—कवते, कवसे, कवे ।

८ काश् -दीप्तौ ।–(प्रकाशना)—काशते, काशसे, काशे ।

९ कु [कव]–शब्दे ।–(बोलना)—कवते, कवसे, कवे ।

१० क्रंद् रोदने ।–(रोना)—क्रंदते, क्रंदसे, क्रन्दे ।

---

*ये धातु दोनों पद में है इसलिये परस्मैपद और आत्मनेपद में इनके रूप होते हैं ।

प्रथम, मध्यम उत्तम पुरुषों के एकवचन के रूप यहाँ सूचनार्थ दिये हैं। पाठक अन्य रूप बना सकते हैं।

वाक्य

१ स बोधते परं त्वं न बोधसे। ...	वह समझता है परंतु तू नहीं समझता।
२ स वृक्ष एधते।...	वह वृक्ष बढ़ता है।
३ अहं पचे। ...	मैं पकाता हूं।
४ आवां पचावहे।...	हम दोनों पका रहे हैं।
५ वयं पचामहे। ...	हम सब पकाते हैं।
६ तौ अंकते। ...	वे दोनों चिन्ह करते हैं।
७ ते ईक्षन्ते। ...	वे सब देखते हैं।
८ वृक्षाः कम्पन्ते।...	सब वृक्ष हिलते हैं।
९ बालाः क्रंदंते। ...	लडके चिल्लाते हैं, रोते हैं।
१० दीपः काशन्ते।...	सब दीप प्रकाशते हैं।



पाठ १४

द्योतित—प्रकाशित

धूलिः—मिट्टि

धूसरा—मिट्टी से भरी हुई

अर्घ्य—पूजा साहित्य

आतिथ्यं—अतिथि सत्कार का सामान

तेपे—तप किया।

सौमित्रिः—सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण

विनयः—नम्रता

प्रत्युज्जगाम—आदर करने के लिये सम्मुख आया

कृतांजलिः—हाथ जोड़ा हुआ

वरायुधं—उत्तम शस्त्र

चाप—धनुष

विभुः—प्रभाव युक्त

लांगलः—हल

जिज्ञासु—जानने की इच्छा करने वाला

जिज्ञासमान—जानने वाला

उपहृत—लाया

दाशरथि, काकुत्स्थ—राम

पाणिः—हाथ

मौर्वी—डोरी

प्रथित—योग्य, सम्मानयुक्त

वैदेहः—जनक

दीप्त—प्रकाशित

दुर्निरीक्ष्या—न देखने लायक

पाद्यं—पांव धोने के लिये उदक

विशुद्धांगी—शुद्ध शरीर वाली

ववन्दतुः—नमन किया

पुरस्कृत्य—आगे करके

यज्ञवाट—यज्ञ का स्थान

पप्रच्छ—पूछा

निरामयं—नीरोगता

निवदितवान्—कहा	आरोपणं—दोरी धनुष्य पर चढ़ाना
कुमार—बालक	समादिष्ट—आज्ञापित
क्षेत्रं—खेत	सचिव—प्रधान मन्त्री
कृषन्—हल चलाने वाला	लीला—खेल
न्यासीकृत—रखा	भग्न—टूट गया
वीर्यशुल्का—वीर्यरूपी धन से प्राप्त होने योग्य	त्रिरात्र—तीन रात्री
तोलन—तोल रखकर पकड़ना	निर्जित—विजित की
भास्वर—तेजस्वी	

संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणे बालकाण्डम् ।

—:o:—

चतुर्थः खण्डः ।

प्रविश्य च तदाश्रमपदं रामलक्ष्मणौ तपसा द्योतितप्रभ धूलिधूसरां दीप्तां ताम् अहल्याम् अपश्यताम् । सा हि गौतम वाक्येन यावद्रामस्यदर्शनं लोकत्रयाणामपि दुर्निरीक्ष्या बभूव । तस्य दर्शनात्तु शापस्यान्तम् उपागता । स्मरन्ति च गौतमस्य वचः पाद्यम् अर्घ्यम् आतिथ्यं च तयोश्चकार । राघवौ हि तपोबलेन विशुद्धङ्गयाः खलु तस्याः पादौ ववन्दतु ।

न्दतुः। गौतमश्च महातपाः सुखी राम सम्पूज्य विधिवत् तप-स्तेपे।

ततो रामः सौमित्रिणा सह उत्तरां दिशं अगच्छत्। विश्वामित्र पुरस्कृत्य मिथिलायाः समीपस्थं यज्ञवाटं चोपागतः। मिथिलाधिपो जनकोऽपि विश्वामित्रम् अनुप्राप्तं श्रुत्वा सहसा विनयेन (प्रत्युज्जगाम) स्वागतं चकार। तेन दत्तां पूजाम् अर्घं च स्वीकृत्य विश्वामित्रः कुशलं तस्य पप्रच्छ। यज्ञस्यापि निरामय न वा। इति कथयितुं विज्ञापयामास च।

राजाऽपि तत्सर्वं निवेदितवान्। स्वयं च कृताञ्जलिः कुमारावन्तरेण विश्वामित्रं पप्रच्छ। यथा कौ कस्य वा पत्नी कुमारौ वरायुध-धरौ देवतुल्य-पराक्रमौ वीरौ। इति। कौशिकोऽपि पूर्वं वृत्तान्तं सर्वं न्यवेदयत्। महाधनुषः पृच्छां कर्तुमेव प्राप्तौ रामलक्ष्मणाविति चाऽकथयत्।

ततो जनक उवाच। धन्योऽहम्। अनुगृहीतश्चास्मि मुनिपुङ्गवेन। यतः काकुत्स्थसहितः प्राप्तवानसि त्वं मे यज्ञार्थम्। दक्षयज्ञस्य ध्वंसकं शिवस्य चापरत्नम् अस्माकं धिमौ पूर्वजे न्यासीकृतम् अस्ति। अथ च क्षेत्रं च शोधयता पुनर्मया सा लब्धा। वर्धमानां च तां राजान आगत्य वरयामासुः। परं भो ऋषे, वरयतामपि सर्वेषां न ददामि। वीरेणैव वरणीया वीर्यशुल्का, इति। तत् सर्वे नृपतयो वीर्यं जिज्ञासवो

मिथिलामागच्छन्ति। जिज्ञासमानां च तेषाम् अपाहृत शैवं धनुः। तस्य धनुषो ग्रहणे तोलनेऽपि वा न केऽपि शक्नुवन्ति। तदेतत् परमभास्वरं धनुर्लक्ष्मणाय रामाय च दर्शयिष्यामि। यदि राम आरोपणं तस्य कुर्यात् सीताम् अहं तस्मै दाशरथये दद्याम्। इति।

ततो जनकेन समादिष्टाः सचिवाः धनुरानयनाय। तेऽपि धनुस्तत् पुरतःकृत्वा बहिर् आगताः। महत् तद् धनुर्दृष्ट्वा रामोऽब्रवीत्। इद दिव्यं धनुर्वरम् पाणिना संस्पृशामि। तोलने पूरणेऽपि वा यत्नवांश्च भविष्यामि। इत्युक्त्वा स धनुर्मध्ये जग्राह। आरोपयित्वा च लीलया मौर्वीमपि पूरयामास तद् धनुः। तत्क्षणमेव सशब्दं तद् भग्नम्। राजा च जनक. प्राञ्जलिर्मुनिपुङ्गवम् उवाच। अत्यद्भुतमिदम्। अचिन्त्यम् अतर्कितं च मया। रामम् इमम् भर्तारम् प्राप्य जनकानां कुले सीता मे दुहिता कीर्तिम् पवाहरिष्यति। अधुना सत्यैव मम प्रतिज्ञा यथा सा वीर्यशुल्का वीरेणैव वरेणीया। गच्छन्तु मे मन्त्रिणः शीघ्रम् अयोध्याम्। दशरथ च महीपतिं प्रश्रितैर्वाक्यैः पुर ममानयन्तु। इति।

पथ समादिष्टा दूता अयोध्यां चिरात्रेणैव प्राविशन्। प्रणताश्च वृद्ध दशरथ राजानम्। वैदेहस्य च मिथिलाधिपस्य कृते तं कुशलं चाव्ययं च पप्रच्छुः ऊचुश्च। वीर्यशुल्केति विदितां वीरवरां जनकात्मजां भवतः पुत्रेण निर्जितां। इति।

समास ॥

१. धूलिधूसरा—धूलिभिः धूसरां मलिनाम्।
२ विशुद्धांगी—विशुद्धं अङ्गम् यस्या सा।
३ मिथिलाधिपः—मिथिलायाः अधिपः।
४ कृताञ्जलिः—कृता अञ्जलिः येन सः।
५ वरायुधधरौ—वर च तद् आयुध च वरायुधं।
वरायुध धरतीति वरायुधधरः। तौ।
६ दक्षयज्ञः—दक्षस्य यज्ञः।
७ वीर्य शुल्का—वीर्यमेव शुल्क यस्याः।
८ जनकात्मजा—जनकस्य आत्मजा।

पाठ १५

प्रथम गण । आत्मनेपद ।

प्रत्यय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ते	इते	न्ते
मध्यम पुरुष	से	इथे	ध्वे
उत्तम पुरुष	इ	वहे	महे

क्लीव् अधाष्टर्ये । (डरपोक होना)

क्लीव्+अ+ते=क्लीवते

क्लीव्+अ+से=क्लीवसे

क्लीव्+अ+इ=क्लीवे

धातु + प्रथमगण का चिह्न अ+प्रत्यय = मिलकर क्रियापद बनता है। पाठकगण अब सब आत्मनेपद के धातुओं के वर्तमान काल के रूप कर सकते हैं।

धातु । प्रथमगण । आत्मनेपद ।

१ क्षम्–सहने ।–(सहन करना)–क्षमते, क्षमसे, क्षमे ।

२ क्षुभ्–(क्षोभ्)–संचलने ।–(हलचल मचना)–क्षोभते, क्षोभसे, क्षोभे ।

३ खण्ड्–भेदने ।–(तोड़ना)–खण्डते, खण्डसे, खण्डे ।

४ कूर्द्–क्रीड़ायां ।–(खेलना)–कूर्दते, कूर्दसे, कूर्दे ।

५ खुर्द्–क्रीड़ायाम् ।–(खेलना)–खूर्दते, खूर्दसे, खूर्दे ।

६ गर्ह्–कुत्सायाम् ।–(निन्दा करना)–गर्हते, गर्हसे, गर्हे ।

७ गल्भ–धाष्टर्ये ।–(धैर्यवान होना)–गल्भते । (इस धातुका प्रयोग प्रायः 'प्र' के साथ होता है।) प्रगल्भते, प्रगल्भसे, प्रगल्भे ।

८ गाधृ-प्रतिष्ठालिप्सयोर्ग्रन्थे च ।-(चलना, ढूंढना, ग्रन्थसम्पादन करना)-गाधते, गाधसे, गाधे ।

९. गाहू-विलोडने ।-(स्नान करना)-गाहते, गाहसे, गाहे ।

१० गुप् जुगुप्-निन्दायाम्-(निंदा करना)-जुगुप्सते, जुगुप्ससे, जुगुप्से । (इस धातु का यह रूप स्मरण रखना चाहिए)

११ ग्रस्-अदने ।-(भक्षण करना)-ग्रसते, ग्रससे, ग्रसे ।

१२ घट्--चेष्टायाम् ।-(प्रयत्न करना) घटते, घटसे, घटे ।

१३ (घोष) कान्ति करणे ।-- चमकना)--घोषते, घोषसे, घोषे ।

१४ घूर्ण--भ्रमणे ।--(घूमना) घूर्णते, घूर्णसे घूर्णे ।

१५ चक्--तृप्तौ, प्रतिघाते च ।-- सतुष्ट होना, प्रतिकार करना--चकते, चकसे, चके ।

१६ चण्ड्--कोपने ।--(क्रोध करना)--चण्डते, चण्डसे, चण्डे ।

१७ चेष्ट्--चेष्टायाम् ।--(उद्योग करना)-चेष्टते, चेष्टसे, चेष्टे

१८ च्यु (च्यव) गतौ ।--(जाना), च्यवते, च्यवसे, च्यवे ।

१९. जभ्--(जम्भ्) गात्रविनामे ।--(जमुहाई लेना)--जम्भते, जम्भसे, जम्भे ।

प्रत्यय लगाने के पूर्व बहुत धातुओं को 'इ' लगती है और इकार के कारण सकार का षकार बनता है।

एध्-वृद्धौ (बढ़ना)

एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते ।
एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे ।
एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे ।

जिन धातुओं को 'इ' नहीं लगती, उनके रूप निम्न प्रकार होते हैं:—

पच् पाके (पकाना)

पक्ष्यते	पक्ष्येते	पक्ष्यन्ते ।
पक्ष्यसे	पक्ष्येथे	पक्ष्यध्वे ।
पक्ष्ये	पक्ष्यावहे	पक्ष्यामहे ।

त्रप् लज्जायाम् (लज्जित होना)

त्रपिष्यते	त्रपिष्येते	त्रपिष्यन्ते
त्रपिष्यसे	त्रपिष्येथे	त्रपिष्यध्वे
त्रपिष्ये	त्रपिष्यावहे	त्रपिष्यामहे
त्रप्स्यते	त्रप्स्येते	त्रप्स्यन्ते
त्रप्स्यसे	त्रप्स्येथे	त्रप्स्यध्वे
त्रप्स्ये	त्रप्स्यावहे	त्रप्स्यामहे

कई धातुओं को 'इ' लगती है, कइयों को नहीं लगती परन्तु कई ऐसे हैं कि जिनके दोनों प्रकार से रूप होते हैं। 'पध्' धातुको 'इ' लगती है। 'पच्' को नहीं लगती, परन्तु त्रप् के दोनों प्रकार से रूप होते हैं। पाठक गण धातुओं के रूपों को देख कर इसका भेद जान सकते हैं।

धातु। प्रथमगण। आत्मनेपद।

१ त्र (त्राय्)-पालने।-(रक्षण करना)- त्रायते, त्रायसे, त्राये। त्रास्यते, त्रास्यसे, त्रास्ये॥

२ त्वर्-संभ्रमे-(जल्दी करना)-त्वरते, त्वरसे, त्वरे। त्वरिष्यते, त्वरिष्यसे, त्वरिष्ये॥

३ दद-दाने।-(देना)-ददते, ददसे, ददे। ददिष्यते, ददिष्यसे, ददिष्ये।

४ द -धारणे।-(धारण करना)-दधते, दधसे, दधे। दधिष्यते, दधिष्यसे, दधिष्ये।

५ दय्-दान गति रक्षणहिंसादानेषु-(दान, गति, रक्षण, हिंसा और स्वीकार करना)-दयते, दयसे, दये। दयिष्यसे दयिष्यते दयिष्ये॥

६ दीक्ष-नियमव्रतादिषु।-(नियम व्रत आदि पालना)- दीक्षते, दीक्षसे, दीक्षे। दीक्षिष्यते। दीक्षिष्यसे, दीक्षिष्ये॥

७ देव्—देवने—(खेलना)—देवते । देविष्यते ॥

८ द्युत् (द्योत्)—दीप्तौ ।—(प्रकाशना)—द्युत् (द्योत्)

द्योतते द्योतिष्यते ॥

९ ध्वंस्—अव स्रंसने ।—(नाश होना)—ध्वंसते । ध्वंसिष्यते ॥

१० नय्—गतौ ।—(जाना)—नयते, नयिष्यते ॥

११ पञ्च्—व्यक्ती करणे ।—(स्पष्ट करना)—पञ्चते । पञ्चिष्यते॥



पाठ १६।

संकट द्वार—संकट के समय उपयोग में लाने के द्वार
उच्छ्वास—सफाई,प्राण वायु का बाहर आना
गुप्तिः—रक्षा
संशोधयेत्—सफाई करावे
छन्न—आच्छादित
वेश्म—घर
पाचयेत—पकावे
वर्जयित्वा—छोड़कर
कर्मारः—लुहार
अरिष्टशाला—सौरशाला
भिक्षुकः—भीख मांगने वाला
अक्रियः—आलसी
भांडागारः—खज़ाना
आयुधागारः—शस्त्रोंका स्थान
योधागारः—युद्ध के सामान का स्थान अथवा सैनिकों का स्थान

अर्दित—क्लेशित दुःखी
दोग्ध्री—दूध देने वाली
विन्दते—प्राप्त करता है
भुंजानः—मांगने वाला
धनक्षयः—पैसेका नाश
गुरु—बड़ा
शतघ्नी—तोप
स्वाधीन—अपने आधीन
खानयेत्—खुदवावे
पयोर्थी—जल की इच्छा करने वाला
पंकः—कीचड़
नक्तं—रात्री में
भक्तं—भात
हुताशनः—अग्नि
महादण्डः—सख्त सज़ा
प्रघोषयेत्—घोषणा करावे
क्लीवः—नपुंसक
उन्मत्त—पागल

कुशीलवान्--बुरे स्वभाव वाला
अश्वागार--घोड़ों का स्थान
अगारः--घर
प्रतोली--मुख्य मार्ग
निष्कुट--द्वार
अर्थमूला--द्रव्य के कारण

अशास्त्र दृष्ट-- शास्त्र की आज्ञा न होनेसे दोष युक्त
परचक्र--शत्रु का हमला
अभियानं--आगमन
लिप्सयाः--चाह।

समास ।

१ कृतपूर्व--पूर्वः कृत।
२ पयोर्थिन्--पयः अर्थयते इति पयोर्थी।
३ तृणच्छन्न--तृणेन छन्नम्।
४ वह्निभयं--वह्नेः भयम।
५ कुशीलवान--कुत्सितेन शीलेन युक्तः।
६ गजागारं--गजार्थं आगरम।
७ अर्थसंनिचयं--अर्थस्य सम्यग् निचयम्।
८ कालकारणम्--कालस्य कारणम।

वाचनपाठः । महाभारम्

संकट द्वारकाणि स्युरुच्छ्रासार्थं पुरस्य च ।
तेषां च द्वारवद्गुप्तिः कार्या सर्वात्मना भवेत् ॥ १ ॥
द्वारेषु च गुरूण्येव यन्त्राणि स्थापयेत्सदा ।
आरोपयेच्छतघ्नीश्च स्वाधीनानि च कारयेत् ॥ २ ॥
काष्ठानि चाभि हार्याणि तथा कूपांश्च खानयेत् ।
संशोधयेत्तथा कूपान्कृत पूर्वान्पयोर्थिभिः ॥३॥
तृणच्छन्नानि वेश्मानि पंकेनाथ प्रलेपयेत् ।
निर्हरेच्चतृण मासि चैत्रे वह्नि भयात्तया ॥ ४॥
नक्तमेव च भक्तानि पाचयेत नराधिपः ।
न दिवा ज्वालये दग्नि वर्जयित्वाऽग्निहोत्रिक ॥ ५ ॥
कर्मारारिष्ट शालासु ज्वले दग्निः सुरक्षितः ।
गृहाणि प्रविश्यान्तर्विधेयः स्याद्धुताशनः ॥ ६ ॥

(१) पुरस्य उच्छ्वासार्थं संकटद्वारकाणि स्युः ।
(२) द्वारेषु गुरूणि यन्त्राणि एव सदा स्थापयेत् । शतघ्नीः च आरोपयेत् । तानि द्वाराणि स्वाधीनानि कारयेत् ॥ (४) चैत्रे मासि वह्निभयात् तृणं निर्हरेत् ॥ (५) नराधिपः नक्तमेव भक्तानि अन्नानि पाचयेत् । अग्निहोत्रिकं वर्जयित्वा अन्यत्र दिवा अग्निं न ज्वालयेत् ।

महादंडश्च तस्य स्याद्यस्याग्निर्दिवा भवेत् ।
अधोपयेद्दैव च रक्षणार्थं पुरस्यच ॥ ७ ॥
भिक्षुकांश्चाक्रियांश्चैव क्लीवोन्मत्ताशीलवान् ।
बाह्याकुर्यान्नराश्चैए दोषाय स्युर्हितेऽन्यथा ॥ ८ ॥
विशालान् राजमार्गांश्च कारयीत नराधिपः ।
प्रापाश्च विपणांश्चैव यथोद्देश समाविशेत् ॥ ९ ॥
भांडागाराण्युधागारा ण्योधागांश्च सर्वशः
अश्वागारान्गजागारान्यलाधिकरणानि च ॥ १० ॥
परिखाश्चैवकौरव्यमतोलीर्निष्कुटानिच ।
न आतवन्यः प्रवश्येत गुह्यमेतद्युधिष्ठिर ॥ ११ ॥
अर्थसनिचयं कुर्याद्राजा पर बलार्दितः ।
औषधानिच सर्वाणि मूलानिच फलानिच ।
चतुर्विधांश्च वद्यांश्च संगृह्णीयाद्विशेषतः ॥ २१ ॥
राजा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे ।
आत्माऽमात्याश्च कोशाश्च दण्डो मित्राणि चैव हि ॥१३ ॥
तथाजनपदाश्चैव पुर च कुरनन्दन ।
कालो वा कारण राजो राजा वा काल कारणम् ॥ १४ ॥

---

(७) यस्य गृहे दिवा अग्निः स्यात् तस्य महान् दण्डः स्यात् ।(८) भिक्षुकान् अक्रियान् क्लीव उन्मत्तान् कुशील वान् मनुष्यान् बाह्यान् नगराद् बाह्यः कुर्यात् अन्यथा ते दोषाय स्युः । (९२) परबलार्दितः राजा अर्थ सनिचयं कुर्यात्

इति ते संशयो मा भूद्राजा कालस्य कारणम् ।
अर्थ मूलोऽपि हिंसांच कुरुते स्वयमात्मनः ।
करैर शास्त्र दुष्टैर्हि मोहात्संपीडयन्प्रजाः ॥ १५ ॥
योहि दोग्ध्रीमुपास्ते च स नित्य विन्दते पयः ।
एवं राष्ट्र मुपायेन भुंजानो लभते फलम् ॥ १६ ॥
परचक्राभियानेन यदि ते स्याद्धनक्षयः ।
अथ साम्नैव लिप्सेथाः धनम् ब्राह्मणेषु यत् ॥ १७ ॥

---

(१५) राजा मोहात् अशास्त्र दुष्टैः करैः प्रजा पीडयन् स्वयमेव आत्मनः अर्थमूलां हिंसा कुरुते । (१६) यः हि दोग्ध्रीं धेनुं उपास्ते स नित्य पयः दुग्ध विन्दते । एवं उपायेन राष्ट्र भुंजानः फल लभते । (१७) यदि परचक्राभियानेन धनक्षयः भवेत् तर्हि यत् अब्राह्मणेषु धनं अस्ति तद् साम्ना एव लिप्सेथा ।



पाठ १७

प्रथम गण। आत्मने पद।

पण् व्यवहारे।—(व्यापार करना)

वर्त्तमान काल।

पणते	पणेते	पणन्ते
पणसे	पणेथे	पणध्वे
पणे	पणावहे	पणामहे

भविष्य काल।

पणिष्येते	पणिष्येते	पणिष्यन्ते
पणिष्यसे	पणिष्येथे	पणिष्यध्वे
पणिष्ये	पणिष्यावहे	पणिष्यामहे

भूतकाल।

अपणत	अपणेताम्	अपणन्त
अपणथाः	अपणेथाम्	अपणध्वम्
अपणे	अपणावहि	अपणामहि

भूतकाल में परस्मैपद के समान धातु के पूर्व लगता है और पश्चात् भूतकाल के प्रत्यय लगते हैं।

आत्मने पद भूतकाल के प्रत्यय ।

(अ)......त	(अ)......इताम्	(अ)......न्त
(अ)......थाः	(अ)......इथाम्	(अ)......ध्वम्
(अ) ...इ	(अ)......वहि	(अ)......महि

पू -पवने ।—(शुद्ध करना)

अ पवत	अ पवेताम्	अ-पवन्त
अ-पवथाः	अ-पवेथाम्	अ पवध्वम्
अ-पवे	अ-पवावहि	अ पवामहि

इस प्रकार आत्मनेपद भूतकाल के रूप करने चाहिए।

---

१ प्याय्...वृद्धौ ।...(बढ़ना—प्यायते । प्यायिष्यते । अप्यायत ॥

२ प्रथ्...प्रख्याने ।...(प्रसिद्ध होना)—प्रथते । प्रथिष्यते । अप्रथत ॥

३ प्रेष् ..गतौ ।...(हिलना)—प्रेषते । प्रेषिष्यते । अप्रेषत ॥

४ प्लु...गतौ ।...(जाना)—प्लवते । प्लोष्यते । अप्लवत ॥

५ बाध्...लोडने ।...(बाधा डालना)—बाधते । बाधिष्यते । अबाधत ॥

६ भण्ड्...परिभाषणे ।...(झगड़ना)—भण्डते । भण्डिष्यते अभण्डत ॥

७ भा ...व्यक्तायां वाचि ।...(बोलना)—भाषते । भाषिष्यते । अभाषत ॥

८ भास्...दीप्तौ ।...(प्रकाशना)—भासते भासिष्यते । अभासत ॥

९ भिक्ष्...भिक्षायाम् ।...(भीख मांगना)—भिक्षते । भिक्षिष्यते । अभिक्षत ॥

१० भृज्(भर्ज्)...भर्जने ।...(भूनना)—भर्जते । भर्जिष्यते अभर्जत ॥

११ भ्रंस्...अवस्रंसने ।... (गिरना)—भ्रंसते । भ्रंसिष्यते अभ्रंसत ॥

१२ भ्राज्...दीप्तौ ।...(प्रकाशना)—भ्राजते । भ्राजिष्यते । अभ्राजत ॥

१३ मुद् (मोद्)...हर्षे ।...(खुश होना)—मोदते । मोदिष्यते । अमोदत ॥

१४ य ...प्रयत्ने ।...(प्रयत्न करना)—यतते । यतिष्यते । अयतत ॥

१५ रभ्...राभस्ये ।...(प्रारंभ करना)—रभते । रप्स्यते । अरभत ॥

१५ रम्—क्रीडायाम् ।—(रममाण होना)—रमते । रंस्यते अरमत ॥

१६ राध्—सामर्थ्ये ।—(समर्थ होना)—राधते । राधिष्यते । अराधत ॥

१७ लभ्—प्राप्तौ ।—(मिलना)—लभते । लप्स्यते । अलभत ।

१८ लोक्—दर्शने ।—(देखना)—लोकते । लोकिष्यते अलोकत ।

वाक्य ।

१ तौ बाधेते । ... वे दोनों बाधा डालते हैं ।

२ ते सर्वे लोकंते ... वे सब देखते हैं ।

३ ईदृशं युद्धं लभते । इस प्रकार का युद्ध प्राप्त होता है ।

४ रामः सीतया सह रमते । राम सीता के साथ रममाण होता है ।

५ तौ यतेते । ... वे दोनों प्रारम्भ करते हैं ।

६ ते प्रा-रभन्ते । ... वे सब प्रारम्भ करते हैं ।

७ सूर्य आकाशे भ्राजते । ...सूर्य आकाश में प्रकाशता है ।

८ तौ यती भिक्षेते । ... वे दो यती भीख मांगते हैं ।

९ स तत्र अभिक्षित । ... उसने वहां भीख मांगी ।

१० तौ अयतेताम् । ... उन दोनों ने यत्न किया ।

११ ते तत्र अभासन्त ।··· वे वहां प्रकाशते थे।

पाठकों को उचित है कि वे इस प्रकार सब धातुओं के रूप बनाकर वाक्य बनाने का यत्न करें ।

धातु । प्रथमगण । आत्मनेपद ।

१ वन्द्-अभिवादने ।-(नमन करना)—वन्दते । वन्दिष्यते । अवन्दत ।

२ वर्च्-दीप्तौ ।-(प्रकाशना)—वर्चते । वर्चिष्यते । अवर्चत ॥

३ वर्प्-स्नेहने ।—वर्पते । वर्पिष्यते । अवर्पत ॥

४ वाह्-प्रयत्ने ।—(प्रयत्न करना)—वाहते । वाहिष्यते । अवाहत ॥

५ वृत्—वर्तने ।—(होना)—वर्तते । वर्तिष्यते, वर्त्स्यते । अवर्तत ॥ (इस धातु के भविष्य काल में दो रूप होंगे । एक इ के साथ और दूसरा इ के बिना ।

६ वृध्-वृद्धौ ।—(बढ़ना)—वर्धते । वर्धिष्यते, वर्त्स्यते । अवर्धत ॥

७ वेष्ट्-वेष्टने ।—(लपेटना)—वेष्टते । वेष्टिष्यते । अवेष्टत ॥

८ व्यथ्-भयचलनयोः ।—(डरना, बेचैन होना)—व्यथते । व्यथिष्यते । अव्यथत ।

९ शङ्क्–शङ्कायाम् ।—(सन्देह करना)—शङ्कते शङ्किष्यते ।
अशङ्कत ॥

१० आशंस्–इच्छायाम् ।—(इच्छा करना आशीर्वाद देना)
आशंसते । आशंसिष्यते । आशंसत ॥

११ शिक्ष्—विद्योपादाने ।-(सीखना)-शिक्षते । शिक्षिष्यते ।
अशिक्षत ॥

१२ शुभ्—दीप्तौ ।-(शोभना)-शोभते । शोभिष्यते । अशोभत

१३ श्लाघ्—कत्थने ।—(स्तुति करना)—श्लाघते श्लाघिष्यते ।
अश्लाघत ॥

१४ श्लोक्—संघाते ।—(श्लोक बनाना)—श्लोकते । श्लोकि-
ष्यते । अश्लोकत ॥

१५ सह्—मर्षणे । -(सहना)—सहते । सहिष्यते । असहत

१६ सेव्—सेवने ।—(सेवा करना, पूजा करना)—सेवते ।
सेविष्यते । असेवत ॥

१७ स्तंभ्—प्रतिबंधे ।—(ठहरना)—स्तंभते । स्तंभिष्यते ।
अस्तंभ ॥

१८ स्पर्ध्—संघर्षे ।—(स्पर्धा करना)—स्पर्धते । स्पर्धिष्यते
अस्पर्धत ॥

१९ स्पन्द्—किंचिच्चलने ।—(थोड़ा हिलना)—स्पन्दते ।
स्पन्दिष्यते । अस्पन्दत ।

२० स्वञ्ज्–परिष्वङ्गे ।—(आलिङ्गन देना)—स्वजते । स्वङ्क्ष्यते
अस्वजत ॥

२१ स्वद्–आस्वादने ।—(पसीना निकालना,चखना)—स्वदते
स्वदिष्यते । अस्वदत ॥

२२ स्वाद्–आस्वादने ।–(स्वाद लेना)–स्वादते । स्वादि ।
अस्वादत ॥

२३ स्विद्–स्नेहनमोहनयोः ।–(तेल लगाना)–स्वेदते ।
स्वेदिष्यते । अस्वेदत ॥

२४ हद्–पुरीषोत्सर्गे ।—(शौच करना)—हदते हत्स्यते ।
अहदत ॥

२५ ह्रेप्–अव्यक्ते शब्दे ।—(हिनहिनाना)—ह्रेपते । ह्रेपिष्यते
अह्रेपत ॥

२६ ल्हाद् सुखे ।—(सुख होना)—ल्हादते ल्हादिष्यते ।
अल्हादत ॥

वाक्य ।

१ स दुःखं सहते । .. यह कष्ट सहता है ।

२ युवां तं सेवेथे ।... तुम दोनों उसकी पूजा करते हो

३ स व्यर्थं स्पर्धते ।... यह व्यर्थ स्पर्धा करता है ।

४ स सभामध्ये शोभते ।	वह सभा के बीच में शोभता है ।
५ स किमर्थं व्यथते ।	वह क्यों बेचैन होता है ।
६ अश्वः ह्रेषते ।	घोड़ा हिनहिनाता है ।
७ बालकौ शिक्षेते ।	दो लड़के सीखते हैं ।
८ हंसानां मध्ये बको न शोभते ।	हंसों में बक नहीं शोभता ।
९ स व्यर्थं शंकते ।	वह व्यर्थ संदेह करता है ।



पाठ १८

विदेहनाथः—जनक
प्रार्थयामासुः—प्रार्थना की
तीर्थप्रतिज्ञः—जिसने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की है।
अभ्युपागतः—प्राप्त
दिष्ट्या—सुदैव से
कनीयस्—छोटा
भजेता—सेवन करे।
पाणीन—हाथ
ध—उत्तम
प्राक्षिपत्—फेंका
व्यतीत—गत
आपृच्छ्वा / आपृच्छन्न—पूछ कर
प्रस्थितः—चल पड़ा
परशुः—कुल्हाड़ा
आसज्य—ठीक धर कर
भंग्धि—तोड़

मोक्षण—छोड़ना
समर्जित—प्राप्त
अनुमन्तुं—अनुमोदन देने के लिये
प्रत्युक्तं—कहा, उत्तर दिया
निमन्त्रयांचक्रुः—निमन्त्रण दिया।
विदेह—एक राष्ट्र का नाम
वरयामहे—पसन्द करते हैं
वचः—भाषण
सविनयं—नम्रता पूर्वक
समानयत्—लाया
सहचरी—सहधर्मचारिणी
उपादिशत्—उपदेश किया
ऊहुः—विवाह किया
विमर्दन—नाशक, सहारक
भार्गवः / जामदग्न्यः—परशुराम
स्कन्धः—कन्धा

श्लाघ्य—स्तुत्य	अप्रतिम—अतुल
समानसार—समान बल	दर्पः—गर्व
यन्त्रित कथः—जिसने अपनी बातें स्वाधीन रखी हैं।	

समास ।

विदेहनाथः—विदेहस्य नाथः।

तीर्णप्रतिज्ञः—तीर्णा प्रतिज्ञा येन।

कौशल्यानन्दवर्धनः—कौशल्याया आनन्दं। स वर्धयतीति।



संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणे बालकाण्डम् ।

पंचमः खण्डः ॥

ततो विदेहनाथस्य जनकस्य दूता राजानं दशरथं प्रार्थयामासुः । रामाय सीता प्रदानेन, जनको राजा कृतार्थो भवतु तीर्णप्रतिज्ञश्च । तदर्हति भवाननुमन्तुम् एतत् । इति । दशरथेनापि प्रत्युक्तम् । तथास्तु । इति । ततो जनकस्यामात्या दशरथमेनम् उपाध्याय-पुरोहितैश्च विवाहार्थं मिथिलां सत्वरमागन्तुं निमन्त्रयांचक्रुः । राजा । परमहर्षितो विदेहान् अभ्युपागतः । जनकोऽपि श्रीमान् दशरथं संपूज्योवाच । दिष्ट्या प्राप्तोऽसि वसिष्ठेन सह । सीतां मे दुहितां सुरसुतोपमां द्वितीयामपि कन्याम् उर्मिलां पुत्राभ्यां ते राम लक्ष्मणाभ्यां ददामि । इति । विश्वामित्रश्च उवाच । राजन्, रामलक्ष्मणयोः सीतया चोर्मिलया सह सदृशो धर्मसम्बन्धः । रूप सम्पदाऽपि सदृशः अन्यच्चास्य कनीयसो भ्रातुः कुशध्वजस्य च सुताद्वयम् अस्ति । तदपि भरतस्य शत्रुघ्नस्य च पत्न्यर्थं वरयामहे । वसिष्ठेनापि विश्वामित्रस्य वचोऽनुमतम् । श्रुत्वा तत् सविनयं जनकोऽप्युवाच । धन्यं मन्ये कुलं यत् स्वयं मुनिश्रेष्ठौ सदृशं कुलसम्बन्धम् आज्ञापयतः । एवं वो भद्रं भवतु । उभौ शत्रुघ्न भरतौ इमे कुशध्वजसुते पत्न्यौ भजेताम् । चत्वारोऽपि

राजपुत्राः चतसृणां राजपुत्रीणां एकस्मिन्नेव दिने पाणीन् गृह्णन्तु । इति ।

एवं निश्चित्य स सीतां सर्वाभरणैः भूषितां कृत्वा समानयत् अग्नेः समक्ष च तां राघवस्याभिमुखे संस्थाप्य जनको राजा कौशल्यानन्द-वर्धनम् रामचन्द्र तम् अब्रवीत् । इयं सीता मे सुता तव सहचरी । पतिव्रताम् एनां स्वीकुरु छायाम् इवानुगताम् । इति । साधु साध्विति च तदा वदत्सु देवेषु सर्वर्षिषु च राजा मन्त्रपूतं जलं वधू वरयोः उपरि प्राक्षिपत् । लक्ष्मणे भरतं शत्रुघ्नं च तथैव क्रमेणोर्मिलया माण्डव्या श्रुतकीर्त्या च सह संयोजयामास । सर्वे भवन्तः काकुत्स्थाः पत्नीभिः सौम्याः सुचरितव्रताश्च भवन्विति तेपि सर्वे त्रिरग्निं परिक्रम्य भार्या अग्निसाक्षम् ऊहुः ।

एव सम्पादिते विवाह विधौ व्यतीतायां च रात्र्यां विश्वामित्रः सर्वान् आपृच्छ्य पर्वतम् उत्तर जगाम । राजाऽपि दशरथः पुत्रैः सह मिथिलाधिपम् आपृच्छ्य पुरीमयोध्यां प्रस्थितः । मार्गे तु राजा राजविमर्दन भार्गव परशुरामं स्कन्धे परशुम् आसज्य प्राप्त ददर्श । स च जामदग्न्योऽभ्यभाषत । राम दाशरथे, श्रूयते ते वीर्यम् । अद्भुत शिव धनुषो भेदनं च । अहमपि प्राप्तोऽस्मि धनुरपरं जामदग्न्यं नाम गृहीत्वा । अस्य पूरणे बलं ते दृष्ट्वा वीर्यश्लाघ्य द्वन्द्व-युद्धं च प्रदास्यामि । इति ।

दशरथस्तु तदा विषण्णवदनो भार्गवं रामं प्राञ्जलिरब्रवीत् महातप ब्राह्मणस्त्वम् । प्रशान्तश्च पूर्वं क्षत्रिय रोषात् बालानां तन्मे पुत्राणाम् अभयं दातुम् अर्हसि किमर्थं मे सर्वं विनाशाय सम्प्राप्तोऽसि महामुने । एकस्मिन् रामे हते न जीवामहे सर्वे वयम् । इति ।

तत्तु वाक्यमनादृत्य जामदग्न्यो राममेवोवाच । (रौद्रेण धनुषा) शिव चापेन समानसारम् इदमपि वैष्णवं धनुः भङ्ग्धि तद् दुर्धर्षम् । इति । रामोऽपि तदा दाशरथि पितुर्गौरवाद् यन्त्रितकथो विनयेनैव भार्गवमब्रवीत् । श्रुतं यत्कर्म कृतवानसि भार्गव । वीर्यहीनमिवाशक्तं मे तेजोऽवजानासि । पश्याद्य मम पराक्रमम् । इत्युक्त्वा क्रुद्धो वरायुधं शरं च भार्गवस्य स्वीचकार आरोप्य च तत्क्षणं तदपि धनुः शरं सज्जं चकार । उवाच च । ब्राह्मणोऽसीति त्वं मे पूज्यः । तस्मन्नाहं शक्तः प्राणानाहर्तुं तेऽनेन शरस्य मोक्षणेन । किन्तु भार्गव, इमां वा त्वद्गतिं तपोबल समर्जितान् वा त्वया लोकान् अप्रतिमान् अनेन शरेण हनिष्यामि न तु कथंचिद् अयं दिव्यो वैष्णवः शरो बलदर्प विनाशनोऽमोघः पतति । इति ।

जामदग्न्यस्तु तदा रामो निर्वीर्यो राममुदैक्षत । अब्रवीच्च । शरं मोक्तुम् अर्हसि । मुक्ते च गमिष्यामि महेन्द्रपर्वतोत्तमम् । इति । तथेति रामेण शरे मुक्ते सति सपदि जामदग्न्यस्तपसा संप्राप्तान् सर्वान्शुभान् आत्मना लोकान् हतान् अपश्यद्

दाशरथिना। आशु च पुनरपि तपश्चरणार्थं महेन्द्रं पर्वतं जगाम।

दशरथस्तु तदाऽऽत्मानं पुत्रमेव च पुनरेव जातं मेने। ततः सर्वेऽयोध्यां जग्मुर्ननन्दुश्च।

कस्यचित्त्वथ कालस्यानन्तरम् भरतं शत्रुघ्नसहितं राजा केकयराजस्थानयामातुल्यं पुरं प्राहिणोत्। रामश्च सलक्ष्मणः सर्वाणि प्रियहितानि कार्याणि मातृपित्रोः, पौराणां च कुर्वन् विजहार सीतया सार्धं बहून् ऋतून्।

(इति संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणे बालकाण्डं समाप्तम्)



पाठ १९ ।

प्रथमगण । उभयपद ।

परस्मैपद और आत्मनेपद धातुओं के वर्तमान, भूत और भविष्यकाल के रूप पाठकों को अब विदित हो चुके हैं । अब उभयपद धातुओं के रूपों के साथ पाठकों को परिचय कराना है । उन धातुओं को उभयपद कहते हैं कि जिन के परस्मैपद के भी रूप होते हैं और आत्मनेपद के भी रूप होते हैं । उभय पद का प्रत्येक धातु दोनों प्रकार से रूप बनाता है ।

जैसा—

नी प्रापणे । (ले जाना)

वर्तमानकाल । परस्मैपद

नयति	नयतः	नयन्ति
नयसि	नयथः	नयथ
नयामि	नयावः	नयामः

वर्तमानकाल । आत्मनेपद

नयते	नयेते	नयन्ते
नयसे	नयेथे	नयध्वे
नये	नयावहे	नयामहे

भविष्यकाल । परस्मैपद ।

नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति ।
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ ।
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः ।

भविष्यकाल । आत्मनेपद ।

नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते ।
नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे ।
नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे ।

भूतकाल परस्मैपद ।

अनयत्	अनयेताम्	अनयन् ।
अनयः	अनयतम्	अनयत ।
अनयम्	अनयाव	अनयाम ।

भूतकाल । आत्मनेपद ।

अनयत	अनयेताम्	अनयन्त
अनयथा	अनयेथाम्	अनयध्वम् ।
अनये	अनयावहि	अनयामहि ।

इस प्रकार प्रत्येक उभयपद धातु के दोनों प्रकार के रुप बनते हैं । पाठकों का उचित है कि वे निम्न लिखित सब धातुओं के रुप बना कर लिखें ।

यह 'नी प्रापणे' धातु परस्मैपद में दिया है। वास्तव में यह उभपद का धातु है। उभयपद के धातुओं के रूप परस्मैपद के अनुसार भी होते हैं, इस लिये कई उभय पद के धातु परस्मैपद में दिये गये हैं।

उभयपद के धातु। प्रथमगण।

१ अञ्च्-गतौ याचने च।—(जाना मांगना)—अचति, अंचते अञ्चिष्यति, अञ्चिष्यते। आञ्चत आंचत।

२ क्रन्द् रोदने।—(रोना)—क्रन्दति, क्रन्दते। क्रन्दिष्यति,

३ खन् अवदारणे।—(खोदना)-खनति, खनते। खनिष्यति, खनिष्यते। अखनत् अखनत।

४ गुह् संवरणे।—(ढांपना)—गूहति, गूहते। गूहिष्यति, गूहिष्यते, घोक्ष्यति, घोक्ष्यते। अगूहत, अगूहत॥ (इस धातु के भविष्य के चार रूप होते हैं एक समय इ लगती है दूसरे समय नहीं लगती)।

५ चप् भक्षणे।—(खाना)—चपति, चपते। चपिष्यति, चपिष्यते। अचपत्, अचपत॥

६ छद् आच्छादने।—(ढांपना)-छदति, छदते। छदिष्यति, छदिष्यते। अच्छदत्, अच्छदत॥

७ जीव् प्राणधारणे ।—(जीना)—जीवति, जीवते । जीविष्यति, जीविष्यते । अजीवत्, अजीवत ।

८ त्विष् [त्वेष्] दीप्तौ ।—(प्रकाशना)—त्वेषति, त्वेषते । त्वक्ष्यति, त्वक्ष्यते । अत्वेषत्, अत्वेषत ॥

९ दाश् दाने ।—(देना)—दाशति, दाशते । दाशिष्यति, दाशिष्यते । अदाशत्, अदाशत ॥

१० धाव् गतिशुद्ध्योः ।—(दौड़ना, धोना)–धावति, धावते । धाविष्यति, धाविष्यते । अधावत्, अधावत ॥

११ धृ [धर्] धारणे ।—(धारण करना)—धरति, धरते । धरिष्यति, धरिष्यते । अधरत् अधरत ॥

१२ पच् पाके ।—(पकाना)—पचति, पचते ॥

१३ बुध् [बोध्] बोधने ।—(जानना)—बोधति, बोधते । बोधिष्यति, बोधिष्यते । अबोधत् अबोधत ॥

१४ भू [भव्] प्राप्तौ ।—(मिलना)—भवति, भवते । भविष्यति भविष्यते । अभवत् अभवत ॥ (भू–सत्तायां । (होना) इस अर्थ का धातु केवल परस्मैपद में है । प्राप्ति अर्थ का भू धातु उभयपद है ।)

भृ [भर्] भरणे ।—(भरना)–भरति, भरते । भरिष्यति, भरिष्यते । अभरत्, अभरत ॥

१६ मिध्–मेधायाम् ।—(बुद्धि-वर्धक कार्य करना)—मेधति, मेधते। मेधिष्यति, मेधिष्यते। अमेधत, अमेधत॥

१७ मृष्–(मर्ष)–तितिक्षायाम् ।—(सहना)–मर्षति मर्षते। मर्षिष्यति, मर्षिष्यते। अमर्षत, अमर्षत॥

१८ मेथ्–मेधायाम् ।—(जानना)—मेथति, मेथते। मेथिष्यति मेथिष्यते। अमेथत, अमेथत॥

(मिदृ, मिधृ, मेदृ, मेधृ, मिथृ, मेथृ इन धातुओं का "मेधायां" अर्थ है। और इनके रूप उक्त, मिध्, मेध् धातुओं के समान ही होते हैं॥ मेदति, मेधति, मेथति इ० ॥)

१६ यज्–देवपूजा-संगति करण-यजन-दानेषु।—(सत्कार संगति' हवन और दान करना) यजति, यजते। यक्ष्यति, यक्ष्यते, अयजत, अयजत॥

२० याच्–याच्ञायाम् ।—(मांगना) याचति, याचते। याचिष्यति, याचिष्यते। अयाचत, अयाचत॥

२१ रंज्–[रज्]–रागे। (कपड़ा आदि रंग देना)—रजति, रजते। रक्ष्यते। अरजत, अरजत॥

२२ राज् दीप्तौ।—'प्रकाशना'–राजति, राजते। राजिष्यति राजिष्यते। अराजत, अराजत॥

२३ लष्-कान्तौ ।—(इच्छा करना)—लषति,लषते । लषिष्यति । लषिष्यते । अलषत्, अलषत ॥

२४ वद् संदेशवचने । —(सदेश देना, बताना)—वदति, वदते । वदिष्यति, वदिष्यते । अवदत्, अवदत ॥

वाक्य ।

रामो लक्ष्मणमवदत् । रामने लक्ष्मण से कहा ।

रामो राजमणिः सदा विराजते । राम राजाओं में श्रेष्ठ होकर सदा शोभता है ।

विश्वामित्रो यजते । विश्वामित्र यजन करता है ।

तौ वस्त्राणि रजतः । वे दोनों वस्त्रों को रगते हैं ।

स बोधति परन्तु त्वं न बोधसि । वह जानता है परन्तु तू नहीं जानता ।

पश्य स कथं धावति ।… देख वह कैसा दौड़ता है ।

चक्रं धरति इति चक्रधरः चक्र धारण करता है इस लिए उसको चक्रधर कहते हैं ।

ब्रह्मचारी चिरञ्जीवति । ब्रह्मचारी बहुत कालतक जीता रहता है ।

किमर्थमिदानीं स्वशरीरः · क्यों अब अपना शरीर

माच्छादसि··· ···ढांपता है।

१० देवदत्तोऽन्नं पचति।···देवदत्त अन्न पकाता है ।

११ ब्राह्मणो वसुधां याचते । ब्राह्मण भूमि मांगता है ।

१२ स जलेन पात्रं भरति । वह जल से पात्र भरता है ।

१३ त्वं कुत्र यजसि । ···तू कहां हवन करता है।

१४ देवशर्म्मा द्रव्यं याचते ।···देवशर्मा पैसा मांगता है।

१५ तौ त्वां बोधिष्येते । ···ये दोनों तुम को समझायेंगे।



पाठ २० ।

अप्रमेय—अतर्क्य
समचेतस्—समबुद्धि
परिश्रुत } —विद्वान्
बहुश्रुत
सहार्थः—जिसका एक उद्देश्य है
शङ्क्य } —संशयकरनेयोग्य
शङ्कितव्य
विश्वस्त—विश्वास करने वाला
यथार्ह—जैसी योग्यता है
अनायस—अ-लोह
आयस—लोहा
प्रमायसि—अशुद्धि करना
प्रकृत्या—स्वभावतः, प्रजाद्वारा
ह्री—लज्जा
सत्यार्जवं—सत्य और सरलता
आपत्—कष्ट
प्रगल्भ—हुशियार, चतुर
बुभूषुः } —उन्नति की इच्छा करने वाला
बुभूषत्

प्रत्याहर्तुं—वापस लेने के लिये
उपजीवन्—आश्रित, अपने आश्रय से रहने वाला
कृत्रिम—बनाया हुआ
बुध्येथाः—जानो
परायण—आश्रय
तितिक्षा—सहनशक्ति
मार्दवं—नरमपन
छिद्—छेद करने वाला
मृज्—शुद्ध करना
नृशंस्य—दुष्ट
अमानित—निरादर किया हुआ
दान्त—दमनशील
लिप्सेयाः—चाहिए
परिच्छदः—सहचारी जन
भूति—उन्नति
सत्रपः—लज्जायुक्त

समास ।—

हृदयच्छिदा—हृदयं छिनत्ति इति हृदयच्छिद् ।

स्मृतिमान्—स्मृतिः यस्यास्तीति ।

अमानित—न मानितः ।

सत्यार्जवसमन्वितः—सत्यार्जवाभ्यां समन्वितः ।

भूतिकामः—भूतिं कामयते इति ।

वाचन पाठः । महाभारतम् ।

राज्ञा पुरोहितः कार्यो भवेद्विद्वान्बहुश्रुतः ।
उभौ समीक्ष्य धर्मार्थावप्रमेयावनन्तरम् ॥ १ ॥
परस्परस्य सुहृदौ विहितौ समचेतसौ ।
ब्रह्मक्षत्रस्य संमानात्प्रजा सुखमवाप्नुयात् ॥ २ ॥
ब्रह्मक्षत्रमिदं सृष्टमेकयोनि स्वयंभुवा ।
पृथग्बलविधानं तन्न लोकं परिपालयेत् ॥ ३ ॥
तपो मन्त्रबलं नित्यं ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठितम् ।
अस्त्रबाहुबलं नित्यं क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितम् ॥ ४ ॥
प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद्धनं चौरैर्हृतं यदि ।
तत्स्वकोशात्प्रदेयं स्यादशक्तेनोपजीवता ॥ ५ ॥

---

(१) उभौ अप्रमेयौ धर्मार्थौ समीक्ष्य परीक्ष्य ।

(२) प्रजा ब्रह्मक्षत्रस्य संमानात् सुखं अवाप्नुयात् ।

(५) यदि चौरैः धनं हृतं प्रत्याहर्तुमशक्यं स्यात् भवेत् तद् धनं राज्ञा स्वकोशात् प्रदेयं स्यात् ।

चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन् भवन्त्युत ।
साहार्थो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा ॥ ६ ॥
चतुर्णां मध्यमौ श्रेष्ठौ नित्य शङ्क्यौ तथापरौ ।
य म येत ममामात्यादिममथांगम स्पृशेव ॥ ७ ॥
नि य तस्माच्छङ्कितव्यममित्रसङ्कुलं यथा ।
कालि श्यश्चेयतुर्येथा मृत्योरिव भय स्यन्॥ ८ ॥
निकृतस्य नरैर्यैर्ज्ञातिरेव परायणम् ।
विश्वस्तग्रद्विश्वस्तास्तेषु वर्तेत सर्वदा ॥ ॥
दान यान दान सतत तितिक्षार्जव मार्दवम् ।
यथार्हं प्रति पूजा च शत्रुमे तद्नायसम् ॥ १० ॥
अनायसेन शस्त्रेण मृदुना हृदयच्छिदा ।
जिह्वामुखर सर्वथा परिमृज्यानुमृज्य च ॥ ११ ॥
राज्यनामा यत्स्थेन राजन् त्व न प्रमाद्यसि ।
मेधावी स्मृतिमान्दक्षः प्रकृत्या चानसूयवान् ॥ १२ ॥

---

(७) चतुर्णां मित्राणां मध्ये मध्यमौ द्वौ भजमान सहज च श्रेष्ठौ । अपरौ यौ द्वौ सहार्थं कृत्रिमं च नित्य शङ्क्यौ शङ्कनीयौ । (८) अर्थे नरो निकृतस्य ज्ञातिरेव परायणम् । अत्र मनु अविश्वस्ता अविश्वस्ता अपि विश्वस्तवत् सर्वदा वर्तेत ।

यो मानितोऽमानितो वा न च दुष्येत् कदाचन ।
गृहे वसेदमात्यस्ते स स्यात्परम पूजितः ॥ १३ ॥
ह्री निषेधास्तथा शान्ताः सत्यार्जव समन्विताः ।
शक्ताः कथयितुं सम्यक् ते तव स्युः समासदः ॥ १४ ॥
अमात्यांश्चातिशूरांश्च ब्राह्मणांश्च परिश्रुतान् ।
पतान् सहायांल्लिप्सेथाः सर्वास्वापत्सु भारत ॥ १५ ॥
कुलीना देशजाः प्राज्ञा रूपवन्तो बहुश्रुता ।
प्रगल्भाश्चानुरक्ताश्च ते तव स्युः परिच्छदाः ॥ १६ ॥
यौनाः श्रोतास्तथा मौलाःस्तये याप्य नहंकृताः ।
कर्तव्या भृति कामेव पुरुषेण बुभूषता ॥ १७ ॥
सत्यवाक् शीलसम्पन्नो गम्भीरः सत्रपोमृदुः ।
पितृ पैतामहीयः स्यात् स मंत्रं श्रोतुमर्हति ॥ १८ ॥

---

(१५) हे भारत ! अतिशूरान् अमात्यान् परिश्रुतान् ब्राह्मणान् सर्वासु आपत्सु एतान् सहाय्यान् लिप्सेथाः ।
(१८) यः सत्यवाक् सत्यभाषी, शीलसम्पन्नः गम्भीरः सत्रपः त्रपया लज्जया सहितः मृदुः पितृपैतामहीयः पितृपितामहान् आगतः स्यात् स एव मन्त्रं गुप्तं विचारं श्रोतुम् अर्हति ।

पाठ २१।

प्रथमगण। उभयपद धातु।

१ वप्-बीज सन्ताने।—(बीज बोना)—वपति, वपते। वप्स्यति, वप्स्यते। अवपत्, अवपत।

२ वह्-प्रापणे।—(लेजाना)—वहति, वहते। वक्ष्यति, वक्ष्यते। अवहत्, अवहत।

३ वृ [वर्]-आवरणे।—[ढांपना]—वरति, वरते। वरिष्यति, वरिष्यते। अवरत्, अवरत।

४ वे [वय्]-तंतु सन्ताने।—(कपड़ा बुनना)-वयति वयते। वास्यति, वास्यते। अवयत्, अवयत।

५ वेण्-वादित्रे।—(बांसरी बजाना)—वेणति, वेणते। वेणिष्यति, वेणिष्यते। अवेणत्, अवेणत।

६ वेन-गतिज्ञानचिन्तायाम्।—(जाना, जानना सोचना) वेनति, वेनते, वेनिष्यति। अवेनत्।

७ शप्- आक्रोशे।—(दोष देना) शपति, शपते। शप्स्यति शप्स्यते। अशपत् अशपत।

८ श्रि (श्रय्)-सेवायाम् ।—(सेवा करना)-श्रयति, श्रयते। श्रयिष्यति, श्रयिष्यते। अश्रयत, अश्रयत।

९ ह्वे (ह्वय्)-स्पर्धायां शब्दे च।—(स्पर्धा करना आह्वान करना, लाना)—ह्वयति, ह्वयते। ह्वास्यति, ह्वास्यते। अह्वयत, अह्वयत।

वाक्य

स त्वामाह्वयति। स किमर्थं शपति। कृषीवलो बीजं वपति। श्रीकृष्णो वेणुं वेणति। अश्वो रथं वहति। ऊर्णासूत्रेण कथयो वस्त्रं वयन्ति। स सेवते।

अब प्रथम गण के उभय पद के धातुओं के साथ पाठकों का परिचय हुआ है। यहां तक प्रथमगण के सब मुख्य और उपयोगी धातुओं के साथ पाठक परिचित हो चुके हैं। पाठकों को उचित है कि वे यहां तक के सब पाठों को दुबारा अच्छी प्रकार पढ़ें, क्योंकि यहां से दूसरा विषय प्रारम्भ होता है। जब तक पहिला विषय कच्चा रहेगा, तब तक उनको आगे बढ़ना बड़ा कठिन होगा। इस लिये पूर्व के सब पाठ ठीक करने के बिना पाठक आगे न बढ़ें।

उपसर्ग।

धातुओं के पीछे उपसर्ग लगते हैं। और इन उपसर्गों के कारण एक धातु के अनेक अर्थ होते हैं। देखिए:--

भू-सत्तायाम्। १ गण।

१ प्र-भू-उत्कर्ष युक्त होना।--प्रभवति। प्रभविष्यति। *प्राभवत्। (प्र-भाव)

२ परा-भू-नाश होना, पराभव करना।--पराभवति। पराभविष्यति। पराभवत्॥ (परा-भव)

३ अप-भू-उपस्थित न होना।--अपभवति। अपभविष्यति अपाभवत्।

४ सं-भू-होना, एकत्र जमा।--संभवति। संभविष्यति। समभवत्। (उभयपद) संभवते संभविष्यते। समभवत् (सं-भव)

५ अनु-भू-अनुभव करना।--अनुभवति। अनुभविष्यति। *अन्वभवत्, अन्वभवताम्, अन्वभवन्। (अनुभव)

६ वि-भू-विशेष उत्पन्न होना।--विभवति। विभविष्यति व्यभवत्॥ (वि-भव)

---

* भूत काल का पहले लगने वाला 'अ' उपसर्ग के पश्चात् लगता है। प्र+अभवत्=प्राभवत्॥ अनु+अभवत्=अन्वभवत्

७ आ-भू—पास रहना, सहाय्य करना।—आभवति। आभविष्यति। आभवत्॥

८ अभि-भू—विजयी होना।—अभिभवति। अभिभविष्यति। अभ्यभवत्।

९ अति-भू—सब से श्रेष्ठ होना।—अतिभवति। अतिभविष्यति। अत्यभवत्।

१० उद्-भू—उत्पन्न होना, उदय होना।—उद्भवति। उद्भविष्यति। उद्भवत्। (उद्भव)

११ प्रति-भू—समान होना।—प्रतिभवति प्रतिभविष्यति। प्रत्यभवत्।

१२ परि-भू—घेरना, चारों ओर घूमना, साथ रह कर सहाय करना।—परिभवति। परिभविष्यति। पर्यभवत्। (उभयपद) परिभवते। परिभविष्यते। पर्यभवत।

१३ उप-भू—पास होना।—उपभवति। उपभविष्यति। उपाभवत्॥

इस प्रकार एकही धातु के पीछे उपसर्ग लगाने से उन के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। ये उपसर्ग २२ हैं:—

१ प्र—अधिकता, प्रकर्ष, गमन।

२ परा—उत्कर्ष। अपकर्ष (नीचे होना)

३ अप—अपकर्ष, वर्जन, निर्देश, विकार, हरण ।

४ सम्—ऐक्य, सुधार, साथ, उत्तमता ।

५ अनु—तुल्यता, पश्चात्, क्रम, लक्षण ।

६ अव—प्रतिबन्ध, निंदा, स्वच्छता ।

७ निस्, ८ निर्—निषेध, निश्चय ।

९ दुस्, १० दुर्—विषमता, निंदा ।

११ वि—श्रेष्ठ, अद्भुत, अनीत ।

१२ आ—निन्दा, बन्धन, स्वभाव ।

१३ अधि—ऐश्वर्य, आधार ।

१४ अपि—शंका, निंदा, प्रश्न, आज्ञा, संभावना ।

१५ अति—उत्कर्ष, आधिक्य, पूजन, उल्लंघन ।

१६ सु—उत्तमता ।

१७ उत्—उदारता, प्रकाश, शक्ति, निंदा उत्पत्ति ।

१८ अभि—मुख्यता कुटिलता ।

१९ प्रति—भाग, खण्डन ।

२० परि—परिणाम, शोक, पूजा, निंदा, भूषण ।

२१ उप—समीपता, सादृश्य, संयोग, वृद्धि, आरम्भ ।

इन अर्थों के सिवाय अन्य और भी बहुत अर्थ हैं परन्तु यहां मुख्य दिये हैं । इनके इस प्रकार अर्थ होने से ही इन के पीछे

रहने के कारण धातुओं के अर्थ बिलकुल बदल जाते हैं। इन के कुछ उदाहरण नीचे देते हैं।

१ विचर्—भ्रमण करना।—विचरति। विचरिष्यति। व्यचरत्।

२ सं चर्—घूमना। सचरति। सचरिष्यति। समचरत्॥

३ सं चल्—चलना। सचलति। सचलिष्यति। समचलत्॥

४ अनुच्—पीछे जाना, नौकरी करना।—अनुचरति। अनुचरिष्यति। अन्वचरत्॥

५ प्रचर्
६ प्रचल् } —अर्थ और रूप पूर्ववत्।

७ उच्चर्—ऊपर जाना, बोलना।—उच्चरति। उच्चरिष्यति। उदचरत्।

८ उच्चल्—चलना।—उच्चलति।

९ परि चर्—चलना नौकरी करना।—परिचरति। परिचरिष्यति। पर्यचरत्।

१० प्रतप्—जलना गरम होना, प्रकाशना।—प्रतपति। प्रतप्स्यति। प्रतिपतत्।

११ संतप्—तपना क्रोध करना।—सतपति। सतप्स्यति। समतपत्।

१२ अवबुध्—जागृत होना, जानना। अवबोधति। अवाबुधत्।

१३ प्रबुध्—निद्रा से जागृत होना। प्रबोधति। प्राबुधत्।

१४ प्रस्था (प्रतिष्ठ्)—प्रवास के लिये निकलना। प्रतिष्ठते। प्रस्थास्यते। प्रातिष्ठत। (आत्मनेपद)

१५ संस्था (संतिष्ठ्)—रहना। संतिष्ठते। संस्थास्यते। समतिष्ठत। (आत्मनेपद)

१६ विस्मृ—भूलना। विस्मरति। विस्मरिष्यति। व्यस्मरत्।

इस प्रकार उपसर्ग के साथ धातुओं के रूप होते हैं। भूतकाल में उपसर्ग के पश्चात् अ, और अ के पश्चात् धातु और प्रत्यय लगते हैं।

वि + अ + स्मर् + अ + त् = व्यस्मरत्।

सम् + अ + तिष्ठ् + अ + त = समतिष्ठत।

अनु + अ + बोध + अ + त् = अन्वबोधत्।

इ और उ के पश्चात् विजातीय स्वर आने से क्रमशः य और व होते हैं। जैसे:—वि + अ = व्य। अनु + अ = अन्व। प्रति + अ = प्रत्य। सु + आ = स्वा।

आशा है कि पाठक इन बातों को ध्यान में रख कर इन धातुओं के प्रयोग याद कर अपने वाक्यों में उपयोग करेंगे।

——:——

पाठ २२ ।

समुदित—उन्नत
चकार—किया
कृत्स्न—सपूर्ण
रोचये—चाहता
अनसूयकः—ईर्ष्या न करने वाला
आदिदेश—आज्ञा की
संभार—सामग्री
अवाप्नुहि—प्राप्त करो
कामतः—विशेषतः
आस्थाय—स्थिर होकर
चिकीर्षा—करने की इच्छा
त्वरितः—शीघ्रता करने वाला
धात्री—दाई
उत्फुल्ल—विकसित
कुब्जा—मंथरा
अमर्षिता—क्रोधित
अभिवर्तते—सम्मुख है
अनलः—अग्नि

अनुमत—अनुमोदित
समानिनाय—बुलाया, लाया
चरन—आचरण करने वाला
जरितं—जीर्ण किया
श्याम—काला
इन्दीवर—नीला कमल
आनयांचक्रे—ले आया
प्रणतः—विशेष नम्र
उपादिशत्—उपदेश किया
प्रत्यक्ष—समक्ष
परोक्ष—साक्षात् जो नहीं होता
ध्वजः—झंडा
विस्मयः—आश्चर्य
पौरः—नागरिक
विदीर्यमाण—फटनेवाला
आचचक्ष—कहा
शेषे—सोती है
विकत्थसे—घमंड करती है
निवेदयितु—बताने के लिये

समास ।

वसुधाधिपः—वसुधाया अधिपः ।

विजितेन्द्रियः—विजितानि इन्द्रियाणि यस्य सः ।

पापदर्शिनी—पापं पश्यतीति ।

उच्छ्रितध्वजा—उच्छ्रिताः ध्वजाः यत्र सा ।



संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणे अयोध्या बालकाण्डम् ।

प्रथमः खण्डः ॥

अथ च राज्ञो वृद्धत्वात् दशरथस्य चिन्ता समुत्पन्ना । कथं मयि जीवति रामो राजा स्यात् । इति । तं च समुदितैः गुणैः सम्पन्नं समीक्ष्य राजा सचिवैः सार्धं मन्त्रं चकार । यौवराज्याभिषेके चास्य तैरनुमतो निश्चयम् अकरोत् । नाना नागरिकान् पृथग् जानपदानपि समानिनाय । ततः सर्वां परिषदम् आमन्त्र्य स वसुधाधिप उवाच । शरीरमिदं मया कृत्स्नस्य लोकस्य हितं चरता जरितम् । अतो विश्रान्तिम् अभिरोचये । श्रेष्ठो हि ममात्मजः सर्वैर्गुणैर्मम पश्चानुजातः । तं प्रातर् यौवराज्ये स्थापयिष्यामि । तद् अनुमन्यन्ताम् भवन्तः इति । तेऽपि समूचुः । बहवः खलु राजन्, कल्याणगुणाः सुतस्य ते । स हि धर्मज्ञः सत्यसन्धः शीलवान् अनसूयकश्च । विजितेन्द्रियश्चापि सन् पौरान् नित्यं स्वजनवत् कुशलं पृच्छति । नास्य कदाचन क्रोधः प्रसादोऽपि वा निरर्थको भवति । तस्मात्सर्वेषां शत्रूणां हन्तारं रामम् इन्दीवरश्यामं यौवराज्ये स्थितं दृष्ट्वा वयं प्रीता यथा स्याम । इति ।

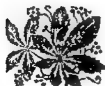
एवं प्रोत्साहितो राजा भृशं ननन्द । अमात्यांश्चादिदेश यौवराज्याभिषेकार्थं च रामस्य सर्वे सम्भाराश्च क्रियन्ताम् ।

इति। शीघ्रमानीयतां कृतात्मा राम इति च सुमन्त्रमकथयत। स तथेति प्रतिज्ञाय राम तत्रानयांचक्रे। रामोऽपि प्राञ्जलिः प्रणतः पितुरन्तिकेऽभ्यगच्छत्। चरणौ चास्य नामकथनपूर्वकं ववन्दे। राजा तमुवाच। सदृश्यां पत्न्यां सदृशस्त्वं गुणज्येष्ठ आत्मज उत्पन्नोऽसि। तस्माद् अवाप्नुहि यौवराज्यम्। इति।

पुनश्च यौवराज्याभिषेक समये दशरथो राममुपादिशत्। कामतस्त्वं वत्स, प्रकृत्यैव गुणवान् इति निर्णीतः। गुणवत्त्वेऽपि पुत्र स्नेहाद् हितं ते वक्ष्यामि। भूयो विनयमास्थाय नित्यं जितेन्द्रियो भव। व्यसनानि च कामक्रोधेभ्यः समुत्थितानि त्यजस्व यः प्रत्यक्षया तथा परोक्षया वृत्त्या वर्तमानः प्रजा इत्याश्च अनुरक्ताश्च कृत्वा मेदिनीं पालयति तस्यैव मित्राणि नन्दन्ति। अमृतस्य लाभेन यथा अमराः। इति।

रामस्य मित्राणि सर्वमेव श्रुत्वा तस्य प्रिय-चिकीर्षया त्वरितः कौशल्यायै शुभं न्यवेदयन्। मन्थरा तु दासी पुरीम् अयोध्याम् उच्छ्रितध्वजां सर्वशृङ्गार विभूषितां च समीपवर्तिनीम् हर्षोत्फुल्लनयनां पप्रच्छ। किमयम् अद्य पौरा अतिमात्रं प्रहर्षिताः। इति। धात्री तु विदीर्यमाणेन हर्षेण सर्वं कुब्जायै यौवराज्याभिषेकस्य वृत्तान्तम् आचचक्षे। कुब्जा मंथरा तु श्रुतमात्रेणैव धात्र्या वचनेन भृशम् अमर्षिता क्रोधेन च दह्यमाना पापदर्शिनी शयानामेव कैकेयीम् आगच्छद् आत्मनः स्वामिनीम्। अब्रवीत् तां च सत्वरम् उत्तिष्ठ मूढे।

किं शेषे । भयं त्वाम् अभिवर्तते । विकत्थसे सौभाग्येन त्वम् अनिष्टे । किन्तु जानीहि सौभाग्यं चलमस्ति यथा नद्याः स्रोत उष्णकाले । अक्षयं तु देवि महत् तव विनाशनम् प्रवृत्तम् । यतो दशरथो रामं यौवराज्ये ध्रुवम् अभिषेक्ष्यति । साहम् आगता शीघ्रं त्वद् हितार्थम् मनस्तेनैव दह्यमाना निवेदयितुम् । इति ।



पाठ । २३

संस्कृत में धातुओं के गण दस हैं। प्रथम गण का वर्णन यहां तक हुआ। अब दशम गण का परिचय कराता हैः—

दशमगण। उभयपद।

अर्च्—पूजायाम्। (पूजा करना)

परस्मैपद । वर्तमानकाल ।

अर्चयति	अर्चयतः	अर्चयन्ति
अर्चयसि	अर्चयथः	अर्चयथ
अर्चयामि	अर्चयावः	अर्चयामः

आत्मनेपद । वर्तमानकाल ।

अर्चयते	अर्चयेते	अर्चयन्ते
अर्चयसे	अर्चयेथे	अर्चयध्वे
अर्चये	अर्चयावहे	अर्चयामहे

परस्मैपद । भविष्यकाल ।

अर्चयिष्यति	अर्चयिष्यतः	अर्चयिष्यन्ति
अर्चयिष्यसि	अर्चयिष्यथः	अर्चयिष्यथ
अर्चयिष्यामि	अर्चयिष्यावः	अर्चयिष्यामः

आत्मनेपद । भविष्यकाल ।

अर्चयिष्यते	अर्चयिष्येते	अर्चयिष्यन्ते ।

अर्चयिष्यसे अर्चयिष्येथे अर्चयिष्यध्वे ।
अर्चयिष्ये अर्चयिष्यावहे अर्चयिष्यामहे ।

यहां पाठक देखेंगे कि इस गण के रूप प्रथम गण के बराबर ही होते हैं, परन्तु बीच में दशम् गण का चिन्ह 'अय' लगता है, इतना ही केवल फरक होने से प्रथम गण के रूप जानने वाले विद्यार्थी के लिये दशम गण के रूप बनाना कोई कठिन नहीं ॥ अर्च् + अय + ति=अर्चयति ॥ अर्च् + अय् + इ+ ष्य + ति= ॥ इत्यादि ।

दशमगण । उभयपद ।

१ अर्ज्-प्रतियत्ने संपादने च ।—(प्राप्त करना)—अर्जयति, अर्जयते । अर्जयिष्यति । अर्जयिष्यते ।

२ अर्ह्-पूजने योग्यत्वेच ।—(सत्कार करना, योग्य होना)— अर्हयति अर्हयते । अर्हयिष्यति, अर्हयिष्यते ।

३ आन्दोल् आन्दोलने ।—(झूला खेलना)— आन्दोलयति । आन्दोलयते । आन्दोलयिष्यति । आन्दोलयिष्यते ॥

४ ईड् स्तुतौ ।—(स्तुति करना)—ईडयति, ईडयते, ईडयिष्यति, ईडयिष्यते ॥

५ ऊर्ज् बल प्राणनयो ।–(बलवान होना) ऊर्जयति, ऊर्जयते ।
ऊर्जयिष्यति, ऊर्जयिष्यते ।

६ कथ वाक्य प्रबन्धे ।–(कथा कहना)–कथयति । कथयते ।
कथयिष्यति, कथयिष्यते ।

७ काल् कालोपदेशे ।–(समय गिनना)–कालयति, कालयते
कालयिष्यति, कालयिष्यते ।

८ कुमार् क्रीडायाम् ।–(खेलना)–कुमारयति, कुमारयते ।
कुमारयिष्यति, कुमारयिष्यते ।

९ गण् संख्याने ।–(गिनना)–गणयति, गणयते । गणयिष्यति, गणयिष्यते ।

१० गर्ज् शब्दे ।–(गर्जना करना)–गर्जयति, गर्जयते ।
गर्जयिष्यति, गर्जयिष्यते ।

११ गर्ह् विनिन्दने ।–(निन्दना)–गर्हयति, गर्हयते । गर्हयिष्यति गर्हयिष्यते ।

१२ गवेष् मार्गणे ।–(ढूंढना)–गवेषयति, गवेषयते । गवेषयिष्यति, गवेषयिष्यते ।

१३ गोम् उपलेपने ।–(लेपन करना)–गोमयति, गोमयते ।
गोमयिष्यति, गोमयिष्यते ।

१४ ग्रंथ् बंधने सन्दर्भे च ।–(बांधना, व्यवस्थित करना)
ग्रन्थयति, ग्रन्थयते । ग्रथयिष्यति, ग्रथयिष्यते।

१५ घुष् (घोष्) विशब्दने ।–(घोषणा करना) घोषयति, घोषयते । घोषयिष्यति, घोषयिष्यते ।

१६ चर्च् अध्ययने ।–(अभ्यास करना)–चर्चयति, चर्चयते । चर्चयिष्यति, चर्चयिष्यते ।

१७ चर्व् भक्षणे ।–(खाना, चबाना)—चर्वयति, चर्वयते । चर्वयिष्यति, चर्वयिष्यते ।

१८ चित्र् चित्रकरणे ।–(तसवीर खेंचना)—चित्रयति, चित्रयते । चित्रयिष्यति, चित्रयिष्यते ।

१९ चिन्त् स्मृत्याम् ।–(स्मरण करना)–चिन्तयति, चिन्तयते । चिंतयिष्यति, चिन्तयिष्यते ।

२० चुर् स्तेये ।–(चोरना)—चोरयति, चोरयते । चोरयिष्यति, चोरयिष्यते ।

२१ छद् आच्छादने ।–(ढापना)—छादयति, छादयते । छादयिष्यति, छादयिष्यते ।

वाक्य ।

१ तौ चित्रयतः ।	वे दोनों तसवीर बनाते हैं ।
२ ते सर्वे चिन्तयन्ते ।	वे सब सोचते हैं ।
३ स द्रव्यं चोरयति ।	वह पैसा चुराता है ।

४ स वने अश्वं गवेषयते । वह जंगल में घोड़े को ढूंढता है।
५ स कृष्णकथां कथयति । वह कृष्ण की कथा कहता है।

पाठकों को उचित है कि वे उक्त धातुओं से इस प्रकार विविध वाक्य बना कर धातुओं के रूपों का उपयोग करें। धातुओं के रूप बारम्बार बनाने से ही ठीक याद रह सकते हैं।

दशम गण । भूतकाल ।

चुर् स्तेये । उभयपद ।

परस्मैपद । भूतकाल ।

अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

आत्मनेपद । भूतकाल ।

अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि.

प्रथम गण के समान ही दशमगण भूतकाल के रूप समझ लीजिए, केवल बीच में 'अय' अधिक होता है।

प्रथम गण । भूतकाल ।		दशमगण भूतकाल
प्र० पु०	अच्छदत् ।	अच्छादयत् ।
म० पु०	अच्छदः ।	अच्छादयः ।
उ० पु०	अच्छदम् ।	अच्छादयम् ।

छद्—आच्छादने' धातु प्रथमगण और दशमगण में भी है। दोनों के रूपों का भेद देखिए। यह धातु उभयपद में है, परन्तु ऊपर परस्मैपद के ही रूप दिये हैं।

दशमगण। उभयपद धातु।

१ छिद्र् भेदने।–(सुराख करना)—छिद्रयति । छिद्रयते। छिद्रयिष्यति, छिद्रयिष्यते । अछिद्रयत, अछिद्रयत ॥

२ छेद्र द्वैधी करणे।–(काटना)—छेदयति, छेदयते। छेदयिष्यति, छेदयिष्यते । अछेदयत, अछेदयत ॥

३ जॄ (जार्) वयोहानौ ।—(वृद्ध होना)—जारयति, जारयते। जारयिष्यति, जारयिष्यते। अजारयत,

४ ज्ञप् ज्ञाने ज्ञापने च ।—(जानना और जताना)–ज्ञपयते। ज्ञपयिष्यति, ज्ञपयिष्यते । अज्ञपयत ॥

५ तप् संतापे ।—(तपाना)—तापयति, तापयते । तापयिष्यति, तापयिष्यते । अतापयत, अतापयत ॥

६ तर्क् वितर्के ।—(तर्क करना)—तर्कयति, तर्कयते । तर्कयिष्यति, तर्कयिष्यते । अतर्कयत, अतर्कयत ॥

७ तिज् निशाने ।—(तेज करना)—तेजयति, तेजयते । तेजयिष्यति, तेजयिष्यते । अतेजयत, अतेजयत ॥

८ तिल (तेल्) स्नेहे ।—(तेल निकालना)—तेलयति, तेलयते । तेलयिष्यति, तेलयिष्यते । अतेलयत, अतेलयत ॥

९ तीर पारगतौ, कर्मसमाप्तौ च ।—(पार आना और कर्म समाप्त करना)—तीरयति, तीरयते । तीरयिष्यति, तीरयिष्यते । अतीरयत, अतीरयत ॥

कई धातु दशम और प्रथम गणों में हैं, इस लिये उन को पूर्व पाठों में प्रथमगण में देकर यहाँ दशमगण में भी दिये हैं । आशा है कि पाठक इन धातुओं के रूप बनाकर वाक्य बनायेंगे । इन के रूप बड़े सरल हैं ।

पाठ २४

सांत्वं—शांति	व्यंजनं—चटनी
जल्पित—कथित	अशन—भोजन
आधित्सता—स्थापन करने वाले ने	निर्व्यंजन—चटनी रहित
	पाप—पापी
ऋद्धः—धनवान्	नियोजयेत्—अलग करे
कामकारः—मनमानी रीति	अविचक्षण—मूर्ख
ऋच्छति—प्राप्त होता है	निधिः—खजाना
मद्गुः—मिलने जुड़ने वाला	प्रज्ञा—बुद्धि ज्ञान
पर्याददीत—स्वीकार करे	असकृत्—बारबार
गोमिन्—गाय आदि पशुओं का पालने वाला	दण्डनीति–राज्य शासनपद्धति कानून
आशीविषः—विष के समान जो जहरीली है,	राजपुरुषः—ऑफिसर, ओहदेदार
	अनयेन—नियम तोड़ कर
किल्विषं—पाप	संविभज्य—बांटकर
दृप्त—घमंडी	संरम्भः—गड़बड़

समास ।

अकीर्तिसंयुक्तः—न कीर्तिः अकीर्तिः । अकीर्त्या संयुक्तः अकीर्तिसंयुक्तः ।

वाचन पाठः महाभारतम् ।

दानमेव हि सर्वत्र सान्त्वेनानभि जल्पितम् ।
न प्रीणयति भूतानि निर्व्यंजन मिवाशनम् ॥ १ ॥
तस्मात्सान्त्वं प्रयोक्तव्यं दण्ड माधित्सतापि हि ।
अपराधानु रूपं च दण्डं पापेषु कारयेत् ।
वियोजयेद्धनैर्ऋद्धानधनानथ वधनैः ॥ २ ॥
कामकारेण दण्डस्तु यः कुर्यादवि चक्षणः ।
स इहाकीर्तिसयुक्तो मृतो नरक मृच्छति ॥ ३ ॥
नतुहन्यान्नृपो जातु दूतं कस्यांचिदापदि ।
चारान्मंत्रच कोशाच दण्ड चैव विशेषतः ॥
अनुतिष्ठेत्स्वयंराजा सर्वं ह्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥ ४ ॥
आत्मन सर्वं कार्याणि तापसे राष्ट्र मेवच ।
निवेदये द्यत्नेन तिष्ठेत्प्रह्वश्च सर्वदा ॥ ५ ॥

---

(१) निर्व्यंजनं व्यञ्जन रहित अशन भोजन इव भूतानि न प्रीणयन्ति ।

(२) पापेषु अपराधानुरूपं दण्डं पापेषु कारयेत् । ऋद्धान् सधनान् धनैः वियोजयेत् । अधनान् वधनैः योजयेत् ।

(३) यः अविचक्षणः अविद्वान् कामकारेण यथेच्छं दण्डं कुर्यात् स इह जगति अकीर्ति संयुक्तः भूत्वा मृतः सन् नरक मृच्छति ।

तापसेषु हि विश्वासमपि कुर्वन्ति दस्यवः ।
तस्मिन्निधीनादधीत प्रज्ञां पर्याददीत च ॥ ६ ॥
ग्रामस्याधिपतिः कार्यो दशग्राम्यास्तथापरः ।
द्विगुणायाः शतस्यैवं सहस्रस्य च कारयेत् ॥ ७ ॥
योगक्षेमञ्च संप्रेक्ष्य वणिजां कारयेत्करान् ।
उत्पत्तिं दानवृत्तिं च शिल्पं संप्रेक्ष्य चासकृत् ॥ ८ ॥
अप्रक्षमनुपयुक्तव्यं फलं गोमिषु भारत ।
प्रभावयति राष्ट्रं च व्यवहारं कृषिं तथा ॥ ९ ॥
तस्माद्गोमिषु यत्नेन प्रीतिं कुर्याद्विचक्षणः ।
दयावान प्रमत्तश्च करान् संप्रणयन्मृदून् ॥ १० ॥
धर्माय राजा भवति न कामकरणाय तु ।
राजा चरतिचेद्धर्मं देवत्वायैव कल्पते ॥ ११ ॥
कर्मशुद्धं कृषिर्वैश्ये दण्डनीतिश्च राजनि ।
ब्रह्मचर्यं तपोमन्त्राः सत्यं चैव द्विजातिषु ॥ १२ ॥

---

(६) दस्यवः दुष्टा अपि तापसेषु विश्वासं कुर्वन्ति ।
(८) योगक्षेमञ्च संप्रेक्ष्य विचार्य वणिजां करान् कारयेत् ।
(११) राजा धर्माय भवति कामकारणाय तु न । राजा चेद् धर्मं चरति देवत्वाय एव कल्पते योग्यो भवति ।

दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशी विषस्य च ।
अविषह्यतमं मन्ये मास्म दुर्बल मासदः ॥ १३ ॥
युक्ता यदा जानपदा भिक्षन्ते ब्राह्मणा इव ।
अभीक्ष्णं भिक्षु रूपेण राजानं घ्नंति तादृशाः ॥ १४ ॥
राज्ञो यदा जनपदे बहवो राजपूरुषाः ।
अनये नोप वर्तंत तद्राज्ञः किल्बिष महत् ॥ १५ ॥
संधिमद्य यथा भुङ्क्ते नामात्या नऽमन्यते ।
निहन्ति बलिनं हत स राज्ञो धर्म उच्यते ॥ १६ ॥
धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद्विद्यते परम् ।
नच कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्म मुत्सृजेत् ॥ १७ ॥

---

(१३) आशीविषस्य दुर्बलस्य मुनेः यत् चक्षुः तत् अवि-षह्यतम मन्ये । दुर्बल मा आसदः स्म । (१७) धर्ममेव अनुवर्तस्व धर्मात्परं न विद्यते । न कामात्, न संरम्भात्, न द्वेषात् धर्मं उत्सृजेत् ॥

पाठ २५.



१ तुल् (तोल्) उन्माने ।—(तोलना)—तोलयति, तोलयते, तोलयिष्यति, तोलयिष्यते । अतोलयत, अतोलयत ॥

२ दण्ड् दण्डनिपातने दमने च ।—(दण्ड देना, दमन करना)—दण्डयति दण्डयते । दण्डयिष्यति, दण्डयिष्यते । अदण्डयत, अदण्डयत ॥

३ दुःख्—दुःखक्रियाम् ।—(कष्ट देना)—दुःखयति, दुःखयते । दुःखयिष्यति, दुःखयिष्यते । अदुःखयत, अदुःखयत ॥

४ धृ (धार्)—धारणे ।—(धारण करना)—धारयति, धारयते । धारयिष्यति, धारयिष्यते । अधारयत, अधारयत ॥

५ निवास्-आच्छादने ।—(ढांपना)—निवासयति, निवासयते । निवासयिष्यति, निवासयिष्यते । अनिवासयत, अनिवासयत ।

६ पार् कर्मसमाप्तौ ।—(कार्य समाप्त करना)—पारयति पारयते । पारयिष्यति, पारयिष्यते। अपारयत्, अपारयत ॥

७ पाल् रक्षणे ।—(रक्षा करना)—पालयति, इत्यादि पूर्ववत् ॥

८ पीड् अवगाहने ।—(कष्ट देना)—पीडयति, पीडयते । पीडयिष्यति, पीडयिष्यते । अपीडयत्, अपीडयत ॥

९ पुष् (पोष्) धारणे ।—(धारण करना)—पोषयति, पोषयते । पोषयिष्यति, पोषयिष्यते । अपोषयत्, अपोषयत ॥

१० पूज् पूजायाम् ।—(पूजा करना)—पूजयति, पूजयते । पूजयिष्यति, पूजयिष्यते । अपूजयत्, अपूजयत ॥

११ पूर् आप्यायने ।—(भरना)—पूरयति, पूरयते । पूरयिष्यति । पूरयिष्यते । अपूरयत्, अपूरयत ॥

१२ पूर्ण् संघाते ।—(इकट्ठा करना)—पूर्णयति, पूर्णयते । (शेष रूप पाठक बना सकते हैं । पूर्ववत् करना ।)

१३ प्रथ् प्रख्याने ।—(प्रसिद्ध होना)—प्रथयति, प्रथयते ।

१४ भक्ष् अदने ।—(खाना)—भक्षयति, भक्षयते ।

१५ भर्त्स् तर्जने ।—(निंदा करना)—भर्त्सयति, भर्त्सयते ।

१६ भूष् अलंकारे ।—(भूषित करना)—भूषयति, भूषयते ।

१७ मह् पूजायाम् ।—(सत्कार करना) महयति, महयते ।

१८ मान पूजायाम् ।—(सम्मान करना)—मानयति मानयते ।

१९ मार्ग अन्वेषणे ।—(ढूँढना)—मार्गयति, मार्गयते ।

२० मार्ज शुद्धौ ।—(स्वच्छ करना) मार्जयति, मार्जयते ।

२१ मुच् (मोच्) प्रमोचने) ।—(खुला करना) मोचयति मोचयते ।

२२ मृष् (मर्ष्) तितिक्षायाम् ।—(मर्षयति, मर्षयते ।

२३ लक्ष् दर्शने ।—(देखना) लक्षयति, लक्षयते ।

२४ वच् परिभाषणे ।—(पढ़ना, बोलना)—वाचयति, वाचयते ।

२५ वर्ध् पूरणे ।—(बढ़ाना पूर्ण करना)—वर्धयति, वर्धयते ।

२६ वृज् (वर्ज्) वर्जने ।—(अलग करना)—वर्जयति, वर्जयते ।

२७ सान्त्व् सामप्रयोगे ।—(शांति करना)—सान्त्वयति सान्त्वयते ।

२८ सुख् सुख क्रियायाम् ।—(सुख देना)—सुखयति, सुखयते।

२९ स्निह्–स्नेहे ।—(मित्रता करना) स्नेहयति, स्नेहयते।

इन धातुओं के शेष रूप पाठक स्वयं बना सकते हैं। दशमगण के धातुओं के रूप बनाना बहुत सुगम है। यह बात पाठकों ने स्वयं अनुभव की होगी।

वाक्य।

पुत्रः पितरं सुखयति। पुत्रौ पितरं सुखयतः। पुत्राः पितरं सुखयन्ति। तव पुत्रः त्वां सुखयिष्यति। तव पुत्रौ त्वां सुखयिष्यतः। तव पुत्रास्त्वां सुखयिष्यन्ति। त्वं तं सान्त्वयसि किम? स त्वां सांत्वयिष्यति। स बालः किं वदति। स पशुं बंधनान्मोचयति। तौ स्वशरीरे भूषयतः। ते स्वशरीराणि भूषयन्ति। यूयं अन्नं भक्षयथ। पुरुषौ स्वशरीरे पोषयेते।

(पाठकों को उचित है कि वे उक्त धातुओं के रूप बना कर इस प्रकार उपर्युक्त वाक्य बनायें और बोलने में उनका उपयोग करें।)

अब पाठक प्रथम और दशम गण के धातुओं के रूप बना सकते हैं। इस लिए अब षष्ठ (छठे) गण के धातुओं के रूप बनाना बताते हैं:—

षष्ठ गण के धातु।

परस्मैपद।

वर्तमान काल।

मृड्—सुखने।—(आनन्द करना)

मृडति	मृडतः	मृडन्ति
मृडसि	मृडथः	मृडथ
मृडामि	मृडावः	मृडामः

षष्ठ गण के धातुओं के लिए प्रत्ययों के पूर्व 'अ' लगता है। मृड्+अ+ति इसी प्रकार अन्यरूप बनते हैं। प्रथम गण के समान ही ये रूप हुआ करते हैं, ऐसा साधारणतः समझने में कोई विशेष हर्ज नहीं। भविष्य काल भी प्रथम गण के समान ही होता है। प्रथम गण में और षष्ठ गण में जो विशेषता है उसका बोध पाठकों को आगे आकर हो जायगा।

परस्मैपद। भविष्यकाल।

मृड् सुखने।

मर्डिष्यति	मर्डिष्यतः	मर्डिष्यन्ति
मर्डिष्यसि	मर्डिष्यथः	मर्डिष्यथ
मर्डिष्यामि	मर्डिष्यावः	मर्डिष्यामः

परस्मैपद। भूतकाल।

अमृडत्	अमृडताम्	अमृडन्
अमृडः	अमृडतम्	अमृडत
अमृडम्	अमृडाव	अमृडाम

तात्पर्य है कि प्रथमगण के समान ही इसके प्रत्यय और रूप हैं। इसलिये पाठकों को इस गण के धातुओं के रूप बनाना कोई कठिन न होगा।

षष्ठगण। परस्मैपद धातु

१ इष् (इच्छ्)-इच्छायाम् ।—(इच्छा करना)—इच्छति । एषिष्यति । ऐच्छत् ।

२ उज्झ्—उत्सर्गे ।–(छोड़ना)—उज्झति । उज्झिष्यति । औज्झत् ।

३ उब्ज्—आर्जवे ।–(सरल होना)—उब्जति । उब्जिष्यति । औब्जत् ।

४ कृत् (कृन्त्)–छेदने ।–(काटना)—कृन्तति । कर्तिष्यति, कर्त्स्यति । अकृन्तत् । (इस धातु के भविष्यकाल में दो रूप होते हैं । एक इकार के साथ और दूसरा इकार के बिना ।)

५ गु (गुव्)-पुरीषोत्सर्गे ।–(शौच करना)—गुवति । गुविष्यति । अगुवत् ।

६ गुज्–शब्दे ।–(बोलना)—गुजति । गुजिष्यति । अगुजत् ।

७ गृ (गिर्)–निगरणे ।–(निगलना)—गिरति । (गिरिष्यति । अगिरत् ॥ (इस धातु के

र के स्थान पर ल होता है।)

गिलति। गिलिष्यति। अगिलत्॥

८ घूर्ण्-भ्रमणे।—(घुमाना, घूमना)—घूर्णति। घूर्णिष्यति। अघूर्णत्।

९ तुड्-तोडने।—(तोड़ना)—तुडति। तुडिष्यति। अतुडत्।

१० त्रुट्-छेदने।—(काटना)—त्रुटति। त्रुटिष्यति। अत्रुटत्।

११ धि (धिय्)-धारणे।—(धारण करना)—धियति। धेष्यति। अधियत्।

१२ धु (धुव्)-विधूवने।—(हिलाना)—धुवति। धुविष्यति। अधुवत्।

१३ ध्रुव्-गतिस्थैर्ययोः।—(स्थिर होना, जाना)—ध्रुवति। ध्रुविष्यति। अध्रुवत्।

१४ प्रच्छ् (पृच्छ्)-ज्ञीप्सायाम्।—(पूछना, जानना)—पृच्छति। प्रक्ष्यति। अपृच्छत्।

१५ ऋच्-स्तुतौ।—(स्तुति करना)—ऋचति। अर्चिष्यति। आर्चत्।

१६ ऋप्-गतौ।—(जान)—ऋपति। अर्पिष्यति। आर्पत्।

वाक्य ।

मां पुत्रः । स पृच्छति । त्वं किं पृच्छसि । स देवानर्चिष्यति । कथं स मद् काष्ठं लुनंति । मनुष्याः सुखमिच्छन्ति । मां पृच्छतः ।

इस प्रकार वाक्य बनाकर सब धातुओं का उपयोग करना चाहिए। जिस से धातुओं के प्रयोग ध्यान में रहेंगे । वाक्य बना बनाकर लिखने का अभ्यास अधिक लाभदायक होगा ।

—:o:—

पाठ २६ ।

आवध्नाति—बांधती है
उग्रत्वं—कठोरता
प्रयुञ्जान—प्रयोग करने वाला
अपवाह्य—निकाल कर
प्रतिबिंबं—प्रतिरूप
लेखा—रेखा
उत्थाय—उठकर
वसुमतिः—पृथिवी
द्विप—शत्रु
इषीका—घास का तिनका
भृशं—बहुत
प्रस्था—बाहर भेजना
स्वायत्त—अपने आधीन
मुक्ता—मोती
बुध्यसे—जानती है
अनर्थक—अनर्थकारक

योजयिष्यति—जोड़ेगा
कण्टक—कांटा
क्षिप्रं—तत्काल
आख्यातं—कहा
उपलक्षये—देखती हूं
असूया—ईर्ष्या, सदेह
प्रेष्यत्वं—नौकरी, दासीभाव
देशान्तरं } —दूसरा देश
लोकान्तरं }
निराकृत—तिरस्कृत
यापयेत्—बदला लेना
उपहिंसितुं—नाश करने के लिये
अपवाहित—एक ओर लिया गया

समास ।

राममाता—रामस्य माता ।
मणिमुक्तादिषु—मणयः च मुक्ताः च मणिमुक्ताः मणिमुक्ताः आदि येषु ।
अनर्थक—न अर्थः अनर्थः । तं करोति ।
कृताञ्जलिः—कृता अंजलिः यया सा ।

संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायणे अयोध्या काण्डम् ।

द्वितीयः खण्डः ।

पुनश्च मन्थरा कैकेयीं राज्ञीम् आचख्यातिस्म । अपि महिषी त्वं कथम् राजधर्माणाम् उग्रत्वं न बुध्यसे । त्वयि सान्त्वमेव केवलम् अनर्थकं प्रयुञ्जान उपस्थितो ऽयमिह भर्ता ते । कौशल्या त्वत्र सोऽर्थेनेव योजयिष्यति । पुत्रमपि ते भरतं तव बन्धुभ्य अपवाह्य स दुष्टात्माऽधुना राममेव निहतकण्टके राज्ये स्थापयिष्यति । मातेव हितकाम्यया त्वया बाले पतिमिषेण शत्रुरेव अङ्केन परिधृत आशीविष इव । सा त्वं कैकेयि क्षिप्रमेव प्राप्तकालं हितम् आत्मनः कुरु । मां चात्मानं च पुत्रं च त्रायस्व । इति ।

कैकेयी तु तद् विज्ञाय तथा हृष्टा सम्पन्ना यथा शरत्कालीना चन्द्रलेखा भवति । सपदि चोत्थाय शयनाद् अब्रवीत् । इदं तु मन्थरे, परं प्रियम् आख्यातं त्वया मह्यम् । नाहं रामे वा भरते विशेषम् उपलक्षये । इति । मन्थरा तु दुःखिता, अभ्यसूयैनाम् पुनरेवोवाच । बालिशे किमर्थम् अस्थाने हृतवत्यसि हर्षम् । नात्मानम् अवबुध्यसे शोकसागर मध्यस्थितम् । सुभगा किल कौशल्या -यस्या अभिषेक्ष्यते पुत्र ।

पश्य त्वं श्व एव तामेव वसुमतीस्वामिनीं परममुदितां हत-विद्विष कौशल्यां देवीं दासीवत् कृताञ्जलिरुपस्थास्यसि । एवं त्वम् अस्याः प्रेष्यत्वं गमिष्यसि, पुत्रश्च तव रामस्य । रामश्च राजा भविष्यति । पश्चात्तु तस्य एव पुत्राः । भरतस्तु कैकेयी, राजवंशात्परिहास्यते । अकण्टकं च राज्यं प्राप्य रामो ध्रुवं भरतं देशान्तरम् अथापि वा लोकान्तरम् एव नाययिष्यति । तस्माद् गच्छतु रामो वनमेव राजगृहात् एतद् हि मे रोचते तव चापि हितमेव सद् भूत्वा । पूर्वं त्वया सौभाग्यवत्तया (सौन्दर्य-दर्पगर्वेण)निराकृताऽऽसीद् राममाता कौशल्या । कथं हि साऽधुना ते सपत्नी वैरं न यापयेत् । इति ।

एवमुक्ता कैकेयी क्रोधेन ज्वलितानना मन्थराम् अब्रवीत्

प्रस्थापयामि रामं क्षिप्रं वनम् अद्यैव । भरतं च यौवराज्येनाभिषेक्ष्ये । किन्तु कथय मां केनैतदुपायेन साधयितव्यम् । इति एवमुक्ता तु मन्थरा पापदर्शिनीदम् अब्रवीत् कैकेयीं रामस्यार्थम् उपहिंसितुम् । हन्त प्रपद्येदानीम् । कथयामि यथा पुत्रस्ते भरतः प्राप्स्यति राज्यं स्वायत्तम् ।

पुरा देवासुराणां युद्धे पतिस्ते देवेन्द्रस्य साहाय्यं चकार त्वमपि तदा सह पतिना । तत्र राजा शम्बासुरेण सह महायुद्धम् अकरोत् । असुरैः शस्त्रैश्च शकली कृतः पतिर्देवि विनष्टचेतनः खलु त्वयैव संग्रामादपवाहितो

रक्षितश्च । तुष्टेन तदा तेन शुभदर्शने द्वौ ते वरौ दत्तौ । स त्वयोक्त आसीत् तदा । गृह्णीतेयाम् एतौ यदाहम इच्छेयम् । इति । ताभ्याम् एवाधुना वराभ्याम् एकेन भरतस्य ते सुतस्य राज्याभिषेकम् अपरेण च रामस्य वनवासं वरयं चतुर्दश-वर्षान्तम । तावता हि कालेन पुत्रोऽपि ते भरतः प्रजाभाव-गतस्नेहः स्थिरं च राज्ये प्रतिष्ठितो भविष्यति । अतश्चाश्वपति सुते (कैकेयि) क्रोधागार प्रविश्याद्य शेष्व क्रोधिताश्च भूमौ । दयिता त्वमसि सदा भर्तुः । त्वत्कृते महाराजो हुताशनमपि विशेत् । अतः सुवर्णादिषु मणिमुक्तादिष्वपि वा दास्यमानेषु नैव मनः कुर्याः । वरावेव याचस्व इति । तयाच प्रोत्साहिता कैकेयी सौभाग्य-मद-गर्विता विमुच्या भरणानि भूमावेव शयन चकार । आभरणानि च तानि वसुधां नक्षत्राणीव नभो-मण्डलं, शोभयांचकार ।



पाठ २७.

प्रथम गण और षष्ठ गण का भेद देखने के लिए निम्न धातुओं के रूप देखिए:—

गुज्–कूजने । प्रथम गण परस्मैपद ।

गुज्–शब्दे । षष्ठ गण । परस्मैपद ।

प्रथम गण । वर्त्तमान काल ।

गोजति	गोजतः	गोजन्ति
गोजसि	गोजथः	गोजथ
गोजामि	गोजावः	गोजाम

प्रथम गण । भविष्य काल ।

गोजिष्यति	गोजिष्यतः	गोजिष्यन्ति
गोजिष्यसि	गोजिष्यथः	गोजिष्यथ
गोजिष्यामि	गोजिष्यावः	गोजिष्यामः

प्रथम गण । भूतकाल ।

अगोजत्	अगोजताम्	अगोजन्
अगोजः	अगोजतम्	अगोजत
अगोजम्	अगोजाव	अगोजाम

इन रूपों के साथ इसी धातु के षष्ठगण के रूप देखिए:—

गुञ्जति	गुजतः	गुजन्ति
गुजसि	गुजथः	गुजथ
गुजामि	गुजावः	गुजामः

षष्ठगण । भविष्यकाल ।

गुजिष्यति	गुजिष्यतः	गुजिष्यन्ति
गुजिष्यसि	गुजिष्यथः	गुजिष्यथ
गुजिष्यामि	गुजिष्यावः	गुजिष्यामः

षष्ठगण । भविष्य काल ।

अगुजत्	अगुजताम्	अगुजन्
अगुजः	अगुजतम्	अगुजत
अगुजम्	अगुजाव	अगुजाम

प्रथमगण में 'गु' का गुण होकर 'गो' हो गया है और 'गोजति' रूप हो गया है । षष्ठगण में गुण नहीं हुआ और 'गुजति' रूप हुआ है । इसी प्रकार भेद देखकर ध्यान में धरना चाहिए । षष्ठगण में भविष्यकाल के रूपों में किसी समय गुण हुआ भी करता है । इसका पता रूपों को देखने से लग जायगा ।

पिछले पाठों में प्रथम दश और षष्ठगण के धातु आये हैं । उनमें कई धातु एक ही हैं, उनके रूप जो साथ साथ दिये हैं, एक दूसरे के साथ तुलना करके देखने से पाठकों को

पता लग सकता है कि इन गणों में परस्पर भेद क्या है। इस भिन्नता को देख और अनुभव करके उनकी विशेषता का ध्यान में धरना चाहिए।

तुदादिगण। परस्मैपद के धातु।

१ मिष्-स्पर्धायाम्।—(स्पर्धा करना)—मिषति। मेषिष्यति। अमिषत्॥

२ मृड्-सुखने।—(सुख देना)—मृडति। मर्डिष्यति। अमृडत्॥

३ मृश्-आमर्शने प्रणिधाने च।—(स्पर्श करना, विचार करना)—मृशति। मर्क्ष्यति, म्रक्ष्यति। अमृशत्॥ (इस धातु के भविष्य में दो रूप होते हैं।)

४ लिख्-अक्षर विन्यासे।—(लिखना)—लिखति। लिखिष्यति। अलिखत्॥

५ लुभ्-विमोहने।—(मोह होना)—लुभति। लोभिष्यति। अलुभत्॥

६ विश्-प्रवेशने।—(अंदर जाना)—विशति। वेक्ष्यति। अविशत्॥

७ व्रश्च्-छेदने।—(काटना)-वृश्चति। व्रश्चिष्यति, व्रक्ष्यति।

८ शुभ
९ शुम्भ् } -शोभायाम् ।—(सुशोभित होना)—शुभति, शुम्भति । शोभिष्यति, शुम्भिष्यति । अशुभत्, अशुम्भत् ॥

१० सद्-विसरण-गत्यवसादनेषु ।—(तोड़ना, जाना, उदास होना) सीदति । सत्स्यति । असीदत् ॥

११ सु-प्रेरणे ।—(प्रेरणा करना)—सुवति । सविष्यति । असुवत् ॥

१२ सृज्-विसर्गे ।—(छोड़ना, बनाना)—सृजति । स्रक्ष्यति । असृजत् ॥

१३ स्पृश्-संस्पर्शने ।—(स्पर्श करना)—स्पृशति । स्प्रक्ष्यति, स्पर्क्ष्यति । अस्पृशत् ॥

१४ स्फुट्-विकसने ।—(विकास होना)—स्फुटति । स्फुटिष्यति । अस्फुटत् ॥

१५ स्फुर्-स्फुरणे ।—(फुर्ति होना)—स्फुरति । स्फुरिष्यति । अस्फुरत् ॥

वाक्य ।

पुत्रः मातापितरौ मृडति । बालकौ लिखतः । सभासदः सभागृहे विशन्ति । सच्छुरिकया लेखनीं वृश्चति । ते तत्र सन्त्यन्ति । ईश्वरो विश्वं जगत्सृजति । त्वं मां किमर्थं स्पृशसि । मम नयनं स्फुरति ।

छुरिका—छुरि, चक्कू

सभासदः—सभा का सदस्य

इन धातुओं के इस प्रकार वाक्य बनाकर पाठक अपनी वक्तृता में उनका उपयोग कर सकते हैं। पत्रव्यवहार में तथा लेख में भी इस प्रकार धातुओं का उपयोग किया जा सकता है। अब षष्ठगण आत्मनेपद के धातु के रूप देते हैं:—

षष्ठगण आत्मनेपद धातु ।

१ कु-शब्दे ।—(बोलना)—कुवते । कुविष्यते । अकुवत ॥

२ जुष्-प्रीति सेवनयोः ।—(खुश होना, सेवन करना)—जुषते । जोषिष्यते । अजुषत ॥

३ आदृ-आदरे ।—(आदर करना)—आद्रियते । आदरिष्यते । आद्रियत ।

४ धृ-अवस्थाने ।—(रहना)—ध्रियते । धरिष्यते । अध्रियत ॥

५ व्यापृ-व्यापारे ।—(व्यवहार करना)—व्याप्रियते व्यापरिष्यते । व्याप्रियत ॥

६ मृ—प्राणत्यागे ।—(मरना)—म्रियते । मरिष्यति । अम्रियत । (यह धातु भविष्य काल में परस्मैपदि होता है ।)

७ उद्विज्—भयचलनयोः ।—(डरना कांपना)—उद्विजते । उद्विजिष्यते । उदविजत ॥

८ लज्—व्रीडने ।—(लज्जित होना)—लज्जते लज्जिष्यते । अलज्जत

वाक्य ।

त्वं तं किं न आद्रियसे । स तान् आदरिष्यते । तौ तान् जुषेते । अहं न व्याप्रिये । तौ श्वः व्यापरिष्येते किम् । स दण्डात् नैव मरिष्यति । तौ अम्रियेताम् । स किमर्थं उद्विजते । त्वं न लज्जसे ।

षष्ठगण । उभयपद धातु ।

१ कृष्—विलेखने ।—(खेती करना, हल चलाना)—कृषति, कृषते । कर्क्ष्यति, कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यति क्रक्ष्यते । अकृषत्, अकृषत । (भविष्य काल के चार चार रूप होते हैं ।)

२ क्षिप्—प्रेरणे ।—(फेंकना)—क्षिपति, क्षिपते । क्षेप्स्यति, क्षेप्स्यते । अक्षिपत्, अक्षिपत ॥

३ तुद्-व्यथने ।—(दुःख होना)—तुदति, तोत्स्यति, तोत्स्यते । अतुदत्, अतुदत ॥

४ नुद्-प्रेरणे ।—(प्रेरणा करना)—नुदति नुदते । नोत्स्यति, नोत्स्यते । अनुदत्, अनुदत ॥

५ दिश्-आज्ञापने ।—(आज्ञा करना)—दिशति, दिशते । देक्ष्यति, देक्ष्यते । अदिशत्, अदिशत ॥

६ मिल्-संगमे ।—(मिलना)—मिलति, मिलते । मेलिष्यति मेलिष्यते । अमिलत्, अमिलत ॥

७ मुच्-मोचने ।—(स्वतन्त्र करना, खुला करना)—मुञ्चति, मुञ्चते । मोक्ष्यति, मोक्ष्यते । अमुञ्चत्, अमुञ्चत ॥

८ लिप्-उपदेहे ।–(लेपन करना)—लिम्पति, लिम्पते ।

९ विद्-लाभे ।–(प्राप्त होना)–विन्दति, विन्दते । वेत्स्यति, वेत्स्यते, वेदिष्यति । वेदिष्यते । अविन्दत् अविन्दत ॥

वाक्य ।

कृषीवलः क्षेत्रं कृषति । धनुर्धरो बाणान् क्षिपति । राजा भृत्यान् आदिशते । त्वं तेन सह किमर्थं न मिलसे । स बन्धनात् अमुञ्चत् । पुरुषार्थी धनं विन्दते ।

पाठ २८.

गरीयः—श्रेष्ठ
प्रेत्य—मरने के पश्चात्
आप्नुयाम्—प्राप्त करें
दुर्ज्ञात—जानने के लिए कठिन
प्राणात्ययः—प्राण जाने के समय
क्लिश्यमान—क्लेश भोगने वाले
दुर्ग—कठिन
प्रत्याहुः—उत्तर कहते हैं
प्रयच्छन्ति—दान करते हैं
सूनृत—सत्य
पुरुषर्षभः—मनुष्य श्रेष्ठ
मधुमांसं—मद्यमांस
यात्रा—शरीर पोषण

बहुमता—बहुत पसन्द
अभ्यनुजानीयुः—आज्ञा करेंगे
श्रोत्रिय—विद्वान्
अ.क्तव्यं—न बोलने योग्य
वर्तितव्यं—बरतना
मायाचारः—कपटी आचरण
साध्वाचारः—उत्तम आचरण
संयत—संयमयुक्त
अन्यवृत्तिः—व्यभिचारः
कुहकं—धोखेबाज़ी
परश्री—दूसरे की सम्पत्ति
संनियच्छन्ति—संयम करते हैं
संशमयन्ति—शांत करते हैं

समास ।

धर्म कोविदाः—धर्मे कोविदाः ।
परश्रिया—परस्य श्रीः । तया ।
साध्वाचारः—साधुश्चासौ आचारश्च ।
संयतात्मा—संयतः आत्मा यस्य सः ।

वाचन पाठः । महाभारतम् ।

किं कार्यं सर्व धर्माणां गरीयो भवतो मतम् । यु० उ०
यथाहं परम धर्ममिह च प्रेत्य चाप्नुयाम् ॥ १ ॥
मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम । भी० उ०
यस्तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः ॥ २ ॥
धर्म्यं धर्म विरुद्ध वा तत्कर्तव्यं युधिष्ठिर ।
एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः ॥३॥
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ।
दशैव तु सदाचार्यः श्रोत्रियानति रिच्यते ॥४॥
पितृन्दश तु मातैका सर्वांवा पृथिवीमपि ॥
गुरु गरीयान् पितृतो मातृतश्चेति मे मतिः ॥५॥
सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम् ।
यत्तु लोकेषु दुर्ज्ञानं त्वयियक्ष्यामि भारत ॥६॥
भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥७॥

---

(२) ते सुपूजिताः मातापितृगुरवः यत् कर्म अभ्यनुजानीयुः आज्ञपयेयुः । तत् धर्म्यं धर्मविरुद्ध वा कर्त्तव्यम् । (४) दश श्रोत्रियान् आचार्यः सदा अतिरिच्यते । सर्वान् दशपितृन् एका माता अतिरिच्यते ।

(७) सत्यं अवक्तव्य भवेत् । अनृतं वक्तव्य भवेत् । सत्यानृते विनिश्चित्य ततः धर्मवित् भवति ।

ह्रियमानेषु भूतेषु तैस्तैर्भावैस्ततस्ततः । यु० उ०
दुर्गाण्यति तरेच्चैव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥११॥

आश्रमेषु यथोक्तेषु यथोक्तं ये द्विजातयः । भी० उ०
वर्तन्ते संयतात्मानो दुर्गाण्यतितरंति ते ॥१२॥

यः पापैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथादपि ।
न तेभ्योऽपि धनं देयं शक्ये सति कथचन ॥८॥

प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृत भवेत् ।
अर्थस्य रक्षणार्थाय परेषां धर्म कारणात् ॥९॥

यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्य [illegible] धर्मः ।
मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ।१०

प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः ।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१३॥

मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तते धर्मकोविदाः ।
वर्जयन्ति दिवा स्वप्न दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥१४॥

स्वेषु दारेषु वर्तन्ते नान्यवृत्ति ऋतावृतौ ।
कर्माण्यऽकुहकार्याणि येषां वाचश्च सुनृताः ॥१५॥

---

(१२) ये द्विजातयः संयतात्मानः यथोक्तेषु आश्रमेषु यथोक्तं वर्तन्ते ते दुर्गाणि अतितरन्ति ।

(१५) ऋतौ स्वेषु दारेषु वर्तन्ते । अन्यवृत्ति न । येषां अकुहकार्यानि कर्माणि । येषां सुनृता वाचश्च ।

परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः ।
सर्वान्देवान् नमस्यन्ति सर्वं धर्मार्थि शृण्वते ॥१६॥
ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान् ।
ये क्रोध संनियच्छन्ति क्रुद्धान्संशमयन्ति च ॥१७॥
मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह मानवाः ।
यात्रार्थं भोजनं येषां सन्तानार्थं च मैथुनम् ॥१८॥

---

(१७) ये मानित्वं न इच्छन्ति । ये परान् मानयन्ति च । ये क्रोधं संनियच्छन्ति । ये क्रुद्धान् संशमयन्ति च ॥



पाठ २९.

द्वितीय गण । परस्मैपद ।

प्रथम गण के लिये 'अ' दशमगण के लिये 'अय' और षष्ठ गण के लिये 'अ' ये चिन्ह लगते हैं ऐसा पूर्व पाठों में कहा है । इस प्रकार कोई चिन्ह द्वितीयगण के लिये नहीं लगता । धातु के साथ प्रत्यय लगा कर एकदम रूप बनते हैं । देखिए —

१ पा–रक्षणे ।—(रक्षण करना)—पाति । पास्यति । अपात् ॥

२ रा–दाने ।—(देना)—राति । रास्यति । अरात् ॥

३ ला–दाने आदाने च ।—(लेना,देना)—लाति । लास्यति । अलात् ॥

४ मा–माने ।—(मिनना, मापना)—माति । मास्यति । अमात्॥

५ ख्या–प्रकथने ।—(कहना)—ख्याति । ख्यास्यति । अख्यात्॥

६ द्रा–कुत्सायाम् ।—(खराब करना)—द्राति । द्रास्यति । अद्रात् ।

७ निद्रा–स्वप्ने ।—(सोना)—निद्राति । निद्रास्यति न्यद्रात् ।

८ भा–दीप्तौ ।—(प्रकाशना)—भाति भास्यति । अभात् ॥

९ वा–गति गंधनयोः ।—(चलना, हिंसा करना)—वाति । वास्यति अवात् ।

१० या–प्रापणे ।—(जाना)—याति । यास्यति । अयात् ।
११ आया-(आना)—आयाति । आयास्यति । आयात् ।

द्वितीयगण के रूप । परस्मैपद ।

वर्तमान काल ।

पाति	पातः	पान्ति ।
पासि	पाथः	पाथ ।
पामि	पावः	पामः ।

भविष्यकाल ।

पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति ।
पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ ।
पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः ।

भूतकाल ।

अपात्	अपाताम्	अपान् ।
अपाः	अपातम्	अपात ।
अपाम्	अपाव	अपाम

आशा है कि पाठक इस प्रकार उक्त धातुओं के रूप बनायेंगे ।

वाक्य ।

ईश्वरः सर्वान् पाति । राजानौ सज्जनान् पातः । मनुष्याः स्वपुत्रान् पान्ति । स इदानीं निद्राति । अहं श्वः नैव निद्रास्यामि । वायुर्वाति । सूर्यो भाति । तारका भान्ति । रथा यान्ति । अश्व आयाति ।

द्वितीयगण । परस्मैपद धातु ।

१ अद्—भक्षणे ।—(खाना)—अत्ति । अत्स्यति । आदत् ॥

२ हन्—हिंसागत्योः ।—(हिंसा करना, जाना)—हन्ति । हनिष्यति । अहन् ।

३ विद्—ज्ञाने ।—(जानना)—वेत्ति वेदिष्यति । अवेत्।

४ अस—भुवि ।—(होना)—अस्ति । भविष्यति । आसीत् ।

५ मृज्—शुद्धौ ।—(शुद्ध करना)—मार्ष्टि । मार्जिष्यति, मार्क्ष्यति । अमार्ट् ॥

६ रुद्—अश्रुविमोचने ।—(रोना)—रोदिति । रोदिष्यति । *अरोदत् अरोदीत् ॥*

उक्त छ धातुओं के रूप विलक्षण होने के कारण नीचे देते हैं:—

अद्—भक्षणे । वर्तमानकाल ।

अत्ति	अत्तः	अदन्ति ।
अत्सि	अत्थः	अत्थ
अद्मि	अद्वः	अद्मः

भूतकाल ।

आदत्	आत्ताम्	आदन्
आदः	आत्तम्	आत्त
आदम्	आद्व	आद्म

इसके भविष्य काल रूप सुगम है। भत्स्यति, भत्स्यतः भत्स्यन्ति। इ० ॥

हन्—हिंसा गत्योः। वर्तमान काल।

हन्ति	हतः	घ्नन्ति
हंसि	हथः	हथ
हन्मि	हन्वः	हन्मः

भूतकाल।

अहन्	अहताम्	अघ्नन्
अहन्	अहतम्	अहत
अहनम्	अहन्व	अहन्म

इसके भविष्यकाल के रूप आसान हैं। हनिष्यति, हनिष्यति, हनिष्यन्ति। इ० ॥

विद् ज्ञाने। वर्तमानकाल।

वेत्ति (वेद)	वित्तः (विदतुः)	विदन्ति (विदुः)
वेत्सि (वेत्थ)	वित्थः (विदथुः)	वित्थ (विद)
विद्मि (वेद)	विद्वः (विद्व)	विद्मः (विद्म)

इस धातु के प्रत्येक वचन के दो दो रूप होते हैं। वे स्मरण करने चाहिये।

भूतकाल।

अवेत्	अविताम्	अविदुः
अवेः (अवेत्)	अवित्तम्	अवित्त
अवेदम्	अविद्व	अविद्म

इस धातु के भविष्यकाल के रूप सुलभ हैं। वेदिष्यति, वेदिष्यतः वेदिष्यन्ति । इ० ॥

अस्—भुवि । वर्तमान काल

अस्ति	स्तः	सन्ति
असि	स्थः	स्थ
अस्मि	स्वः	स्म

भविष्यकाल

इस धातु के भविष्यकाल में भू धातु के रूप होते हैं। भविष्यति, भविष्यत, भविष्यन्ति। भविष्यसि, भविष्यथ. भविष्यथ । भविष्यामि । इ० ॥

भूतकाल

आसीत्	आस्ताम्	आसन्
आसीः	आस्तम्	आस्त
आसम्	आस्व	आस्म

मृज्—शुद्धौ । वर्तमानकाल ।

मार्ष्टि	मृष्टः	मृजन्ति मार्जन्ति
मार्क्षि	मृष्ठ	मृष्ठ
मार्ज्मि	मृज्वः	मृज्म

भूतकाल ।

अमार्ट्, (अमार्ड्)	अमृष्टम्	अमृजन्, (अमार्जन्)
अमार्ट् (अमार्ड्)	अमृष्टम्	अमृष्ट
अमार्जम्	अमृज्व	अमृज्म

इस धातु का भविष्यकाल सुगम है। मार्जिष्यति, र्जिष्यत', मार्जिष्यन्ति ॥ ६० ॥

रुद्—अश्रुविमोचने। वर्तमानकाल।

रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

भूतकाल।

अरोदत, अरोदीत्	अरुदिताम्	अरुदन्
अरोदः, अरोदीः	अरुदितम्	अरुदित
अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

भविष्यकाल के रूप—रोदिष्यति, रोदिष्यत' रोदिष्यन्ति ॥ ६० ॥ आशा है कि, पाठक इन रूपों को ध्यान में रखेंगे। इनका वारंवार वाक्यों में उपयोग करने से इनका स्मरण रह सकता है।

वाक्य

१ रामो रावणं हनिष्यति। राम रावण को मारेगा।
२ भृत्यः पात्रान् मार्ष्टि।...नौकर बर्तनों को साफ करता है
३ त्वं किमर्थं रोदिषि।...तू क्यों रोता है।
४ आसीद् राजा रामचन्द्रो नाम। रामचन्द्र राजा था।
५ एतन्न विद्मः। ...हम सब इसको नहीं जानते।
६ ह्यः त्वं न अरोदः किम्। क्या तू कल नहीं रोया?
७ सर्वे वयं अन्नं अद्मः।...हम सब अन्न खाते हैं।

पाठ ३०

प्रियार्ह—प्रेम के योग्य
अत्यवर्तत्—अतिक्रमण किया
सा—सोई
अतथोचिता—उसके लिये अयोग्य
ईषद्—किंचित
व्याजहार—कहा
अभिषिच्यतां—अभिषिक्त होवे
चीर—वल्कल
पन्नगः—सांप
चारित्र्यं—जीवन
व्याली—व्याघ्री
युज्यतां—ठीक है
प्रसीद—खुश हो
शैब्यः
अलर्क }—पूर्व राजाओं के नाम
छिन्नः—छेदा हुआ

आख्यातुं—कहने के लिये
प्रतीहारी—द्वार रक्षक
अनावृता—न ढंकी हुई
विप्रकृत—दुःख दिया हुआ
अवमानित—अपमानित
सत्यसंध—सत्यप्रतिज्ञ
संभार—सामान
निःसंज्ञ
विगतचेतनः }—बे होश
उच्छ्वसनं—सांस, उच्छ्वास
चेतनं—जीवन
अलं—बस
स्पृशाम—स्पर्श करना
अनुतप्यसे—पश्चात्ताप करते हो
विवासनं—बाहर भेजना
तुष्येयं—खुश होऊंगी
तरुः—वृक्ष

समास

दुष्टचारित्र्या—दुष्टं चारित्र्यं यस्याः सा।
आत्मविनाशः—आत्मनः विनाशः।

रौद्रतरं—अतिशयेन रौद्रम् ।
विफलं—विगतं फलं यस्मात् ।
शयनोत्तमः—शयनेषु उत्तमः ।
कामपराधीनः—कामेन पराधीनः ।

संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायणे अयोध्या काण्डम् ।

तृतीयः खण्डः ।

अथ दशरथो महाराजः प्रियार्हां कैकेयीम् प्रियम् आख्यातुम् अस्या अन्तपुरं प्रविवेश । शयनोत्तमे तु स्त्रियं न ददर्श । न हि देवी पुरा कदापि तस्य तां वेलाम् अत्यवर्तत । प्रतीहारी कृताञ्जलिः सविनयम् उवाच । देव भृशं क्रुद्धा देवी । क्रोधागारं चाहित गत्वा सुप्ता । ततः स राजा तत्र अगच्छत् । गत्वा च जगतीपतिस्तत्र ताम् अनर्हायामेव भूमौशयानाम् अपश्यद् अतथोचिताम् । अपापस्तु स वृद्धः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीं तरुणीं भार्यां पापसंकल्पां ददर्श धरणी तले शयानाम् । कामी च कमलपत्राक्षीम् उवाच । किमर्थं मयि कल्याणि चेतसि त्व दनुकूले सति भूमौ शेषे । प्रियमात्रं ते करिष्यामि यावद् हि चक्रम् आवर्तत तावती मे वसुन्धरा । इति । कैकेयी तूवाच । नाहं विप्रकृता वा अवमानिता वा । अभिप्रायं कश्चित् त्वया कृतम् इच्छामि । देहि मे प्रतिवचनं सत्यं यदि कर्तुमिच्छसि । अनतरं ते कथयिष्यामि यदस्ति मे वाञ्छितम् । इति ।

दशरथस्तु कामपराधीन ईषद्विस्मितः कैकेयीम् उवाच । न जानासि. किम् यन्नास्ति मे त्वत्तः कोऽपि प्रियतरो रामेण विना । करिष्यामि तव प्रियम् । ब्रूहि यद् ईप्सितं ते मनसा । इति । संहृष्टा तेन कैकेयी महाघोरं मनोगतम् आत्मनो व्याजहार । एष सत्यवाक् सत्यसन्धश्च दशरथो वरं मे ददाति । तद् अनेनैव प्रकल्पितेन रामस्य सम्भारेणाभिषेकस्य पुत्रो मे भरतोऽभिषिच्यतां यौवराज्ये । रामः पुनश्चतुर्दश वर्षाणि दण्डकारण्यम् आश्रयतु । चीरवसनं च परिदधान उग्रं तप आचरतु । एष मे कामः परमः । दत्तमेव त्वया वरं वृणम् । अद्यैव राघवं वने प्रयान्तं कथं द्रक्ष्यामीति मे चिन्ता । दारुणमेव वचः श्रुत्वा महाराजो निःसंज्ञो बभूव । संज्ञां प्रतिलभ्यापि पुनर्जगत्याम् असंवृतायामेव विगतचेतनः पपात । पन्नग इव मण्डले मन्त्रैर्निरुद्धो दशरथोऽपि दीर्घमुच्छ्वसनं चक्रे । चिरेण क्रुद्धः कैकेयीम् अब्रवीत् । दुष्टचारित्रे पापे किं तव कृत रामेण । जननीतुल्यां पुनरसौ धारयति सदा वृत्तिं त्वयि । व्यालीव तीक्ष्णविषा त्वं मया निवेशिता आत्मविनाशायैव भवनम् । अपश्यतो हि मे रामं ध्रुवं नष्ट भविष्यति चेतनम् । तद् अलम् । त्यज्यताम् एष निश्चयः । अप्येष स्पृशामि ते चरणौ मूर्ध्ना । प्रसीद प्रसीद । इति ।

कैकेयी त्वथ रौद्राद् रौद्रतर वाक्यम् प्रत्युवाच । यदि राजन्, वरौ दत्त्वा पुनः प्रत्यनुतप्यसे कथं पुनः पृथिव्यां धार्मि-

कत्वम् आत्मनः कथयिष्यसि । शैब्यः श्येनः कपोतीये कथानके स्वमांसमपि पक्षिणे ददौ । अलर्कश्च चक्षुषी दत्वा गतिम् उत्तमां जगाम । सागरोऽपि समयं कृत्वा नैव कदापि वेलाम् प्रतिवर्तते । आत्मन एव पूर्वजानां तदपि सर्वं वृत्तम् अनुस्मर । वचनं चात्मनो विफलं मा कुरु । दुर्मतिरेव त्वं राजन् ! धर्मं परित्यजसि । रामं चाभिषिच्य कौशल्यया नित्यं रन्तुम् इच्छसि । अहं हि तवाग्रतो विषमेव पीत्वाऽद्य मरिष्यामि यदि रामोऽभिषिच्यते । नाहं रामस्य विवासनेन विना तुष्येयम् । इति । श्रुत्वा तद् राजाऽतीव रामं स्मरन् निश्वस्य न्यापतद् भूमौ छिन्नो यथा तरुः ।



पाठ ३१.

आस्–उपवेशने । (बैठना)

आस्ते	आसाते	आसते
आस्से	आसाथे	आध्वे
आसे	आस्वहे	आस्महे

भविष्य काल

आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते
आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे
आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे

भूतकाल

आस्त	आसाताम्	आसत
आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्
आसि	आस्वहि	आस्महि

अधि+इ (अधी)—अध्ययने । (अध्ययन करना)

वर्तमान काल

अधीते	अधीयाते	अधीयते
अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
अधीये	अधीवहे	अधीमहे

भविष्यकाल ।

अधीते	अधीयाते	अधीयते
अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
अधीये	अधीवहे	अधीमहे

भविष्यकाल

अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

भूतकाल

अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

यही धातु परस्मैपद में भी है जिसका अर्थ 'अधि+इ= स्मरणे' (स्मरण करना) है । इस के रूप ।

परस्मैपद वर्तमान काल

अध्येति	अधीतः	अधीयन्ति
अध्येषि	अधीथः	अधीथ
अध्येमि	अधीवः	अधीमः

[परस्मै०] भविष्यकाल

अध्येष्यति	अध्येष्यतः	अध्येष्यन्ति
अध्येष्यसि	अध्येष्यथः	अध्येष्यथ
अध्येष्यामि	अध्येष्यावः	अध्येष्यामः

(परस्मै०) भूतकाल

अध्यैत्	अध्यैताम्	अध्यायन्
अध्यैः	अध्यैतम्	अध्यैत
अध्यायम्	अध्यैव	अध्यैम

इन के उभय पद के ये सब रूप विशेष उपयोगी होने से ठीक स्मरण रखने चाहिये ।

ईश्-ऐश्वर्ये ।-(प्रभुत्व करना)

आत्मने पद । वर्तमान ।

ईष्टे	ईशाते	ईशते
ईशिषे	ईशाथे	ईशिध्वे
ईशे	ईश्वहे	ईश्महे

(आत्मने०) भविष्य काल ।

ईशिष्यते	ईशिष्येते	ईशिष्यन्ते
ईशिष्यसे	ईशिष्येथे	ईशिष्यध्वे
ईशिष्ये	ईशिष्यावहे	ईशिष्यामहे

(आत्मने०) भूतकाल ।

ऐष्ट	ऐशाताम्	ऐशत
ऐष्ठाः	ऐशाथाम्	ऐड्ढ्वम्
ऐशि	ऐश्वहि	ऐश्महि

चक्ष्-(व्यक्तायां वाचि)-योजना।

आत्मने०। वर्तमान काल।

चष्टे	चक्षाते	चक्षते
चक्षे	चक्षाथे	चड्ढ्वे
चक्षे	चक्ष्वहे	चक्ष्महे

आत्म०। भविष्य काल।

चक्ष् धातु के लिए 'ख्या' आदेश होता है। स्मरण रखना चाहिए।

ख्यास्यते	ख्यास्येते	ख्यास्यन्ते
ख्यास्यसे	ख्यास्येथे	ख्यास्यध्वे
ख्यास्ये	ख्यास्यावहे	ख्यास्यामहे

आत्म०। भूतकाल।

अचष्ट	अचक्षाताम्	अचक्षत
अचष्ठा	अचक्षाथाम्	अचड्ढ्वम्
अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्ष्महि

जागृ-निद्राक्षये।-(जागना)

परस्मैपद। वर्तमान काल।

जागर्ति	जागृतः	जाग्रति
जागर्षि	जागृथः	जागृथ
जागर्मि	जागृवः	जागृमः

परस्मै० । भविष्यकाल ।

जागरिष्यति	जागरिष्यतः	जागरिष्यन्ति
जागरिष्यसि	जागरिष्यथः	जागरिष्यथ
जागरिष्यामि	जागरिष्यावः	जागरिष्यामः

परस्मै० । भूतकाल ।

अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
अजागः	अजागृतम्	अजागृत
अजागरम्	अजागृव	अजागृम

द्विष्-अप्रीतौ-(द्वेष करना)-उभयपद

परस्मैपद । वर्तमान काल ।

द्वेष्टि	द्विष्टः	द्विषन्ति
द्वेक्षि	द्विष्ठः	द्विष्ठ
द्वेष्मि	द्विष्वः	द्विष्मः

आत्मने पद । वर्तमान काल ।

द्विष्टे	द्विषाते	द्विषते
द्विक्षे	द्विषाथे	द्विड्ढ्वे
द्विषे	द्विष्वहे	द्विष्महे

परस्मै० । भूतकाल ।

अद्वेट्	अद्विष्टाम्	अद्विषन्, अद्विषुः
,,	अद्विष्टम्	अद्विष्ट
अद्वेषम्	अद्विष्व	अद्विष्म

आत्म० । भूतकाल ।

अद्विष्ट	अद्विषाताम्	अद्विषत
अद्विष्ठाः	अद्विषाथाम्	अद्विड्ढ्वम्
अद्विषि	अद्विष्वहि	अद्विष्महि

द्विष् धातुका भविष्यकाल 'द्वेक्ष्यति, द्वेक्ष्यते' ऐसा होता है उसके रूप सुगम हैं ।

वाक्य ।

अहं तं अद्विषि । ...मैं उसको द्वेष करता था ।

ते सर्वेऽपि तं अद्विषन् । ...वे सब भी उसको द्वेष करते थे ।

त्वं किमर्थं द्वेक्षि । ...तू क्यों द्वेष करता है ?

युवां न द्विष्ठः । ...तुम दोनों द्वेष नहीं करते ।

आवां ह्यः अजागृव । ...हम दोनों कल जागते रहे ।

त्वं श्वःजागरिष्यसि किम् ।...क्या तू कल जागेगा ?

सर्वे वयं अद्य जागृमः । ...सब हम आज जागते हैं ।

ईश्वरो द्विपदश्चतुष्पदः ईष्टे ।...परमेश्वर द्विपाद और चतुष्पादों पर प्रभुत्व करता है ।

अहं व्याकरणं नाध्यैयि । ...मैंने व्याकरण पढ़ा नहीं ।

किमध्येषि । ...तू क्या पढ़ता है ।

स ज्यौतिष मध्येष्यति ।	...वह ज्यौतिष पढ़ेगा ।
तौ ग.णितं अधीयाते ।	..वे दोनों गणितपढ़ते है ।
आस्ते स तत्र	...बैठा है वह वहां ।
वयं सर्वे अत्रैवास्महे ।	...हम सब यहां ही बैठते हैं ।
युवां तत्र आसिष्येथे ।	...तुम दोनों वहां बैठोगे ।
अहं नैव त ।सिष्ये ।	...मैं वहां नहीं बैठूंगा ।
कस्तत्रासिष्यते ।	.. कौन वहां बैठेगा ।



पाठ ३२.

आतुरः—दुःखित	पप्रच्छ—पूछा
दिग्भ्यः—दिशाओं से	समागतः—आया हुआ
प्रवसंतं—प्रवास के लिये जाने वाला	आशंस—इच्छा करना
छिद्—टुकड़े करना, फेंकना	विक्रायकः—बेचने वाला
अभिभूत—प्राप्त होना	सुरापः—शराब पीने वाला
संभारः—सामान	रथ्या—बाजार
प्रक्रम—प्रारंभ करना	आसन्नः—प्राप्त
मर्मन्—प्राणधार के स्थान	शोकरक्तः—शोक से लाल
दैन्यं—दीनता	निकृन्त—काटना
मंत्रज्ञा—बात जानने वाली	न शशाक—न सका
रजनी—रात्री	प्रजागरः—जागरण
गम्यतां—चलिए	वैश्रवण—कुबेर
विरम—देर करो	समाहितः—सावधान
संरब्धः—घबराया हुआ	आपन्न—प्राप्त
प्राकृतः—मूर्ख	धृष्ट—मूर्ख, गुस्ताख
अतिसृज्य—दान देकर	ददानि—देऊँगा
पावक—अग्नि	धिक्—धिक्कार
	प्रतिजाने—प्रतिज्ञा करता हूँ
	द्विः—दोवार

समास ।

सुरापः—सुरां पिबति इति सुरापः ।

सपुत्रा—पुत्रेण सहिता ।

अज्ञातावस्थः—अज्ञाता अवस्था यस्य सः ।

वाक्यार्थं—वाक्यस्य अर्थम् ।

नृपतिः—नराणां पतिः ।

उग्रविषं—उग्रं विषं यस्य ।

संक्षिप्त-वाल्मीकि-रामायणे अयोध्याकाण्डम् ।

चतुर्थः खण्डः

पुनश्च दशरथ आतुरया अतिदीनया च वाचा कैकेयीं पप्रच्छ । को नाम त्वाम् इमम् अनर्थम् उपादिशत् । किं नाम माम् अधुना वक्ष्यन्ति राजानो नाना दिग्भ्यः समागताः । न हि रामं प्रवसंतं मैथिलीं चापि दुःखितां दृष्ट्वा चिरं जीवितुम् आशसे । विकरिष्यन्ति च माम् पुत्रविक्रायकम् अनार्यत्वेऽऽर्या ब्राह्मणमिव सुरापं रथ्यासु । सुखिना भव कैकेयि नरकेऽस्मान् प्रक्षिप्य सर्वान् । मृते मयि रामे वनं गते सा इदानीं त्वं विधवा, राज्यं कारयिष्यसि सपुत्रा । इति ।

दशरथस्य परिभ्रमित-चेतसश्च तथा विलपतः सूर्योऽस्तं गतः। रजनी चाप्यवर्तत। प्रभाते वसिष्ठः संभारान् उपगृह्य प्रविवेश। सूतपुत्रं च सचिवं सुमन्त्रम् उवाच। क्षिप्रं मां नृपतेः कथयस्वेहागतम्। त्वरयस्व। आसन्नः पुष्यनक्षत्रयोगो यस्मिन्नेव रामेण प्राप्तव्यं राज्यम्। इति श्रुत्वा सोऽपि सुमन्त्रः प्रविवेशान्तः पुरम्। पश्चात्तावस्थश्च राघवं प्रस्तोतुं प्रचक्रमे। राजा तु धार्मिकः सूतं प्रति शोकरक्तेक्षण उवाच। वाक्यैस्तु खलु भूयो मम मर्माणि निकृन्तसि। इति। सुमन्त्रो नैवावबुध्यतास्य वाक्यार्थम्। दशरथोऽपि यदा दैन्यात् स्वयं वक्तुं न शशाक तदा कैकेय्येव मंत्रज्ञा सुमन्त्रं प्रत्युवाच। रामहर्षसमुत्सुको राजा रजनीं प्रजागर-परिश्रान्तो निद्रां गतोऽस्ति। तत् सूत, गच्छ त्वरितं रामं च राजपुत्रं प्रवेशय। इति।

सुमन्त्रो गत्वा वैश्रवण-सकाशं रामं सीतया पार्श्वस्थितया शयिनं चित्रया सहितं ददर्श ववन्दे च तं विनयज्ञो वन्दी। विज्ञापयामास च। कौशल्या-सुप्रजा राम, पिता त्वां द्रष्टुम् इच्छति। तथा च महिषी कैकेय्यपि। गम्यतां तत्र। मा चिरय। इति। एवम् उक्तो नरसिंहः संमान्य सीतां शुद्धान्तः पुरम् आक्रमत। विनीतवत् पितुश्चरणौ चाभिवाद्य सुसमाहितः कैकेय्या अपि चरणौ ववन्दे। नृपतिस्तु दीन ईक्षितुमपि न शशाक। किं पुनर् अभिभाषितुम्। तच्च नरपते रूपं भयावह दृष्ट्वा परं भयम् आपन्नो रामः पदेनेव स्पृष्ट्वा पन्नगमुपविषम्।

अचिन्त्य कल्पं च तं शोकं नृपतेरवधार्य रामः संरब्धान्तरो बभूव। कैकेयीं चाभिवाद्य सोऽब्रवीत्। कच्चिन्मया नापराद्धम् अज्ञानात्। येन मे कुपितः पिता। कच्चिद् न भरते शत्रुघ्ने मातॄणां वा मम कस्याश्चित् किंचिद् अशुभम्। नृपे तु कुपिते नेच्छेयं जीवितुं मुहूर्तमपि। इति।

कैकेयी तु निर्लज्जा धृष्टं वच आत्म हितम् उवाच। न राजा कुपितो राम। नास्य किंचन व्यसनम्। तु त्वद्भयाद् न अनुभाषते किंचिद् आत्मनो मनोगतम्। त्वाम् अप्रियं वक्तुं न प्रवर्ततेऽस्य वाणी। तदवश्यं कार्यं त्वया यद् अनेन श्रुतं मत्तः। एष हि पुरा राजा माम् अभिपूज्य वरं च दत्वाऽन्यः प्राकृत इव पश्चात्तप्यते। ददानि वरम् इति मामतिसृज्य च विशांपतिरधुना निरर्थकं गतजले बन्धितुम् इच्छति सेतुम्। एतत्तु श्रुत्वा रामो व्यथित उवाच। अहोधिक्। नार्हसि देवि मां वक्तुम् ईदृशम्। पावकेऽपि पतेयमहं राज्ञो वचनात्। ब्रूहि तद्देवि यद् राज्ञोऽभिकाङ्क्षितम्। करिष्ये तत्प्रतिजानेऽपि। न रामो द्विर् अभिभाषते। इति।



पाठ ३३ ।

तृतीयगण । उभयपद ।

दा-दाने (देना)

परस्मैपद । वर्तमान काल ।

ददाति	दत्तः	ददति
ददासि	दत्थः	दत्थ
ददामि	दद्वः	दद्मः

तृतीयगण के धातुओं का विशेष यह है कि इस गण के वर्तमान और भूतकाल के रूप होने के समय धातु के पहिले अक्षर का द्वित्व होता है।

'दा' धातु का द्वित्व होकर 'दादा' बनता है, और प्रत्यय लगने के समय पहिले अक्षर का दीर्घस्वर ह्रस्व हो कर 'ददा+ति=ददाति' ऐसा रूप बनता है। द्विवचन और बहुवचन के प्रत्यय लगने से पूर्व अंत्य आकार का लोप होता है। जैसा—दा, दादा, ददा+मः=दद्+मः=दद्मः।

परस्मैपद । भूतकाल ।

अददात्	अदत्ताम्	अददुः
अददाः	अदत्तम्	अदत्त
अददाम्	अदद्व	अदद्म

इसके भविष्यकाल के रूप सुगम हैं। दास्यति। दास्यते। इसके आत्मनेपद के रूप निम्न प्रकार होते हैं :—

आत्मनेपद वर्तमानकाल।

दत्ते	ददाते	ददते
दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
ददे	दद्वहे	दद्महे

आत्मनेपद। भूतकाल।

अदत्त	अददाताम्	अददत
अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
अददि	अदद्वहि	अदद्महि

धा-धारण पोषणयोः (धारण पोषण करना)

परस्मैपद।

वर्तमान—दधाति, धत्तः, दधति ॥ दधासि, धत्थः, धत्थ ॥ दधामि, दध्वः, दध्मः ॥

भविष्य—धास्यति। धास्यसि। धास्यामि ॥

भूत—अदधात्, अधत्ताम्, अदधुः ॥ अदधाः, अधत्तम्, अधत्त ॥ अदधाम्, अदध्व, अदध्म ॥

आत्मनेपद।

वर्तमान—धत्ते, दधाते, दधते ॥ धत्से, दधाथे, धध्वे ॥ दधे, दध्वहे, दध्महे ॥

भविष्य—धास्यते। धास्यसे। धास्ये ॥

भूत—अधत्त, अदधाताम्, अदधत ॥ अधत्थाः, अदधाथाम्, अधद्ध्वम् ॥ अदधि, अदध्वहि, अदध्महि ॥

भृ-धारण पोषणयोः ।—(धारण और पोषण करना)

परस्मैपद ।

वर्तमान—बिभर्ति, बिभृतः, बिभ्रति । बिभर्षि, बिभृथः, बिभृथ । बिभर्मि, बिभृवः, बिभृमः ॥

भविष्य—भरिष्यति । भरिष्यसि । भरिष्यामि ॥

भूत—अबिभः, अबिभृताम्, अबिभरुः । अबिभः, अबिभृतम्, अबिभृत । अबिभरम्, अबिभृव अबिभृम ॥

भी-भये (डरना)

वर्तमान—बिभेति, बिभीतः, बिभ्यति । बिभेषि, बिभीथः, बिभीथ । बिभेमि, बिभीवः, बिभीमः ।

(इसके द्विवचन में दीर्घ 'भी' के स्थान पर ह्रस्व 'भि' होकर भी रूप बनते हैं । जैसा—बिभितः, बिभिथः इ० ॥

भविष्य—भेष्यति । भेष्यसि भेष्यामि ॥

भूत—अबिभेत्, अबिभीताम्, अबिभयुः । अबिभेः अबिभीतम्, अबिभीत । अबिभयम्, अबिभीव, अबिभीम ॥

(यहां दीर्घ 'भी' के स्थान पर ह्रस्व होकर दूसरे रूप होते हैं । जैसाः—अबिभित, अबिभिम इ० ॥

मा—माने।—(मिनना, मापना)

आत्मनेपद।

वर्तमान—मिमीते, मिमाते, मिमते। मिमीषे, मिमाथे, मिमीध्वे। मिमे, मिमीवहे, मिमीमहे॥

भविष्य—मास्यते। मास्यसे। मास्ये॥

भूत—अमिमीत, अमिमाताम्, अमिमत। अमिमीथाः, अमिमाथाम्, अमिमीध्वम्। अमिमि, अमिमीवहि, अमिमीमहि॥

विष्—व्याप्तौ।—(व्यापना)

परस्मैपद।

वर्तमान—वेवेष्टि, वेविष्टः वेविषति। वेवेक्षि, वेविष्ठः, वेविष्ठ। वेवेष्मि, वेविष्वः, वेविष्मः॥

भविष्य—वेक्ष्यति। वेक्ष्यसि। वेक्ष्यामि॥

भूत—अवेवेट्, अवेविष्टाम्, अवेविषुः। अवेवेट्, अवेविष्टाम्, अवेविषुः। अवेवेट्, अवेविष्टम्, अवेविष्ट। अवेविषम्, अवेविष्व, अवेविष्म॥

(पद के अन्तिम ट् कार का ड् कार होता है। जैसाः—अवेवेट, अवेवेड्।)

हा—त्यागे ।—(त्यागना)

परस्मैपद ।

वर्तमान—जहाति, जहीतः, जहति । जहासि, जहीथः, जहीथ । जहामि, जहीवः, जहीमः ॥

भविष्य—हास्यति । हास्यसि । हास्यामि ॥

भूत—अजहात, अजहीताम, अजहुः । अजहाः, अजहीतम, अजहीत । अजहाम, अजहीव, अजहीम ॥

(इस धातु के दीर्घ 'ही' के स्थान पर ह्रस्व होकर और रूप बनते हैं। जैसा—जहीतः, जहिथः । अजहिव, अजहिम । इ० ॥

हु—दानादानयोः ।—(देन, लेन, खाना)

परस्मैपद ।

वर्तमान—जुहोति, जुहुतः जुह्वति । जुहोषि, जुहुथः जुहुथ । जुहोमि, जुहुवः जुहुमः ॥

भविष्य—होष्यति । होष्यसि । होष्यामि ॥

भूत—अजुहोत, अजुहुताम, अजुहवुः । अजुहोः, अजुहुतम, अजुहुत । अजुहवम, अजुहुव, अजुहुम ॥

इस प्रकार तृतीय गण के धातुओं के रूप होते हैं। द्वितीय और तृतीय गण में धातु बहुत थोड़े हैं, परन्तु जो हैं उनके सब रूप विलक्षण होते हैं, और विशेष लक्ष्य पूर्वक

ध्यान में धरने पडते हैं, इसलिये इस संस्कृत स्वय शिक्षक के तृतीय भाग में उनमें से थोड़े हि धातु दिये हैं। और जो दिये हैं, उन के रूप भी साथ साथ दिये हैं जिस से पाठक आसानी के साथ उन धातुओं का अभ्यास कर सकते हैं। पाठकों को उचित है कि वे इन दोनों गणों के रूपों को अच्छी प्रकार स्मरण करें।

वाक्य।

१ अहं अद्य जुहोमि।	मैं आज हवन करता हूं।
२ स कदा होष्यति।	वह कब हवन करेगा।
३ तौ ह्य एव अजुहुताम्।	उन दोनों ने कल ही हवन किया
४ वेवेष्टि इति विष्णुः।	व्यापता है इस लिये विष्णु कहते हैं।
५ आवां धान्य मिमीवहे।	हम दोनों धान मापते हैं।
६ युवां ह्यः अबिभेतम्।	तुम दोनों कल डर गये।
७ अहं न बिभेमि।	मैं नहीं डरता।
८ बिभर्ति इति भरतः।	पोषन करता है इस लिये भरत कहते हैं।
९ पात्रं उदकेन, भरिष्यसि किम्।	क्या तू जल से बर्तन भरेगा
१० पुष्करस्रज अधत्त।	कमलमाला धारण की।

११ दाता द्रव्यं ददाति ।	दाता पैसा देता है।
१२ अहं अददाम्।	मैंने दिया।
१३ सर्वे वयं दद्मः।	सब हम देते हैं।
१४ स नैव दास्यति।	वह नहीं देगा।
१५ वयं व्याघ्रं बिभीमः।	हम शेर से डरते हैं।
१६ धान्यं कुडवेन* मिमीते।	धान कुडव से मापता है।



*चार सेर का एक कुडव होता है।

पाठ ३४.

भृशं—बारम्बार, अत्यंत
दारुणं—कठोर
अपरः—दूसरा
प्रतिश्रुतं—वचन दिया
अमित्रः—शत्रु
विव्यथे—कष्ट हुआ
दुर्धर्षः—हमला करने अयोग्य
दह—जलना
आश्वास—समाधान करना
व्रीडा—लज्जा
न्यपतत्—गिर पड़ा
कशा—चाबुक
अनुनी—शांत करना, समझाना
क्षयः—नाश
वेश्मन्—घर
मूर्धनि—शिर में
सशल्यः—जिसको बाण लगे हैं
महारणं—बड़ा युद्ध
संनिदेशः—आज्ञा
प्रशास्तु—राज्य करे
वसुधा—पृथिवी
मन्यु—क्रोध
नियुज्यमानः-कार्य में नियोजित
विस्रब्धः—निर्भय
मातुलः—मामा
भोक्ष्यते—भोजन करेगा
कैतवं—असत्य, कपट
वाजी—घोड़ा
विसंज्ञः—मूर्छित
अपकर्ष—नीचे खेंचना
परिष्वक्तः—आलिंगित
अवघ्रातः—सूंघा
अलीकं—अप्रिय

—:o:—

समास।

सशल्यः—शल्येन सहितः ।

महारणं—महच्च तद् रण च महारणम् ।

महाद्युतिः—महति द्युतिः यस्य सः

जटाचीरधरः—जटा च चीरं च जटाचीरे। जटाचीरे धरतीति, जटाचीरधरः।

राज्यनाशः—राज्यस्य नाशः।

धर्मशीलः—धर्म एव शील यस्य सः।

परमशोकः—परमश्चासौ शोकश्च।

—:o:—

संक्षिप्त वाल्मीकि रामायणे अयोध्याकाण्डम्

पञ्चमः खण्डः।

एवं च प्रतिज्ञातवति रामे कैकेयी भृशं दारुणं वच उवाच। पुरा राम सशल्येन ते पित्रा महारणे रक्षितेन वरौ मे दत्तौ। तत्र तद् याचितो मया राजाऽधुना। तावेव वरौ। वरयेकेन भरतस्याभिषेचनम् अपरेण च राघव दण्डकारण्ये तव गमनम् अर्थये। यदि पितरम् आत्मानं च सत्य—प्रतिज्ञं

कर्तुमिच्छसि तत् तिष्ठतु भवान् पितुः सन्निवेशे। नव पञ्च च वर्षाणि प्रवेष्टव्यम् अरण्य त्वया यथाऽनेन प्रतिश्रुतम्। तद् अभिषेकं त्यक्त्वा जटाचीरधरो भव। भरतश्चेमाम् प्रशास्तु कोशलपतेर्वसुधाम्। कुरु रघुनन्दन वचनमेतद् नरेन्द्रस्य। सत्येन चैवं महता राम तारयस्व नृपम्। इति।

तद् अप्रिय श्रुत्वा मरणोपमं वचनम् अभिसन्नो रामो नैव विव्यथे। कैकेयीं चाब्रवीत्। एवमस्तु। इत एव गमिष्यामि वनमहं वस्तुम्। राज्ञः प्रतिज्ञां चानुपालयन् जटाचीरधरश्च। नैव त्वया कार्यो देवि मन्युः। इदं तु ज्ञातुमिच्छामि। किमर्थं महीपति मां दुर्धर्षो यथापूर्वं नाभिनन्दति। हितेन गुरुणा पित्रा मे कृतज्ञेन च नृपेणाहं नियुज्यमानः किम कुर्यां प्रियं विस्रब्धः। अलीकं मानसं तु केवलं में हृदय वहते येन मां राजा स्वयमेव नाह भरतस्याभिषेचनम्। अपि तु ह्रीमन्त-मेनम् आश्वासय च। गच्छन्तु दूता मातुलकुलाद् आनयितुं भरतम्। एषोऽहं गच्छामि वस्तुं दण्डकारण्यं चतुर्दश समाः। इतिः।

श्रुत्वा चैतद् हृष्टा बभूव कैकेयी राघवमपि प्रस्थानार्थं त्वरयामास। उवाच च। यद् व्रीडान्वितः स्वयं नृपो न त्वाम् अभिभाषेव नैतत् किंचिद् अन्यं नरश्रेष्ठ। यावत् त्वं न यातो वनं तावन्न ते पिता स्नास्यते भोक्ष्यतेऽपि वा राम,। इति।

तत्तु कैतवयुक्तं कैकेय्या वचनं श्रुत्वा राजा दशरथः परम शोकेन परिप्लुतः। धिक् कष्टम् इति च निःश्वस्य पर्यङ्के मूर्छितो न्यपतत्। रामस्तु कशाया हतो वाजीव कैकेय्या वनं गन्तुं कृतत्वरः समुत्थाप्य राजानमेवम् उवाच। देवि नाहमर्थपरः। जानीहि माम् ऋषिभिस्तुल्यस्य धर्मस्यानुष्ठातारम्। किमन्यत् पितरि शुश्रूषया तस्य वचनक्रियया वा महत्तरं धर्मस्याचरणम्। नून कैकेयि, न त्वं मयि मुख्यान् गुणान् आंशससे यत् त्वं ममेश्वरतराऽपि सती राजान मेवावोचः। न तु माम्। भवतु यावत्। आपृच्छेमातरं कौशल्याम्। सीता चानुनयामि। ततश्चाद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद् वनम्। कर्तव्यं च भवत्या तथा कैकेयि यथा भरतो राज्यं पालयेत् पुत्रवत् पितुश्च शुश्रूषेत्। स हि नो धर्मः। इति।

अनन्तरं च रामोमहाद्युति राज्ञो दशरथस्य च विसंज्ञस्य कैकेय्याश्च अनार्याया अपि निपपात चरणौ। अन्तःपुराच्च निष्क्रम्य सुहृज्जनं स्वं ददर्श। लक्ष्मणस्तु क्रुद्धोऽपि बाष्पपरिपूर्णाक्षः पृष्ठतरतम् अनुजगाम रामचन्द्रम्। न तु रामस्य राज्यनाशोऽपि महतीं लक्ष्मीम् अपकर्षतिस्म शीतरश्मेरिव क्षयः। न वनं गन्तुकामस्य वसुन्धरां त्यजतश्चापि चित्तविक्रियाप्यलक्ष्यत सर्वलोकातिगस्य। किन्तु निगृह्येन्द्रियाणि मनसा दुःखं च धारयन् राम आत्मना प्रविवेश वेश्म मातुरप्रियशंसिवान्। मातरं चोपसगृह्यासीत् परिष्वक्तस्तया।

अवघ्रातश्चासीद् मूर्धनि । उक्तश्च यथा । वत्स प्राप्नुहि वृद्धाना धर्मशीलानां च राजर्षीणाम् आयुः कीर्ति कुलोचित धर्मं च । इति ।

पाठ ३५.

चतुर्थ गण के धातु ।

चतुर्थ गण के धातुओं के वर्तमान और भूतकालों के रूपों में 'य' लगता है ।

शुच्—पूतीभावे ।—(शुद्ध करना)—उभयपद ।

वर्तमान—शुच्यति, शुच्यतः, शुच्यन्ति । शुच्यसि, शुच्यथः, शुच्यथ । शुच्यामि, शुच्यावः, शुच्यामः ।

भूत—अशुच्यत, अशुच्यताम्, अशुच्यन् । अशुच्यः, अशुच्यतम्, अशुच्यत । अशुच्यम, अशुच्याव, अशुच्याम ॥

भविष्य—शोचिष्यति । शोचिष्यसि । शोचिष्यामि ॥

आत्मनेपद के रूप ।

वर्तमान—शुच्यते, शुच्येते, शुच्यन्ते । शुच्यसे, शुच्येथे, शुच्यध्वे । शुच्ये, शुच्यावहे, शुच्यामहे ॥

भूत—अशुच्यत, अशुच्यताम, अशुच्यन्त । अशुच्यथाः, अशुच्येथाम्, अशुच्यध्वम । अशुच्ये, अशुच्यावहि, अशुच्यामहि ॥

भविष्य—शोचिष्यते । शोचिष्यसे । शोचिष्ये ॥

धातु ।

१ ऋध्-वृद्धौ (परस्मै०)—बढ़ना ।—ऋध्यति । अर्धिष्यति । आर्ध्यत् ॥

२ कुट् कुट्टने (पर०)—कूटना ।—कुट्यति । कोटिष्यति । अकुट्यत् ॥

३ कुप् क्रोधे (पर०)—क्रोध करना ।—कुप्यति । कोपिष्यति । अकुप्यत् ॥

४ कृश्-तनू करणे ।—(कृश होना)—कृश्यति । कर्शिष्यति । अकृश्यत् ॥

५ क्रुध्-क्रोधे ।—(क्रोध करना)—क्रुध्यति । क्रोत्स्यति । अक्रुध्यत् ॥

६ क्लम्-ग्लानौ ।—(थकना)—क्लाम्यति । क्लमिष्यति । अक्लाम्यत् ॥

७ क्लिद्-आर्द्रीभावे ।—(गीला होना)—क्लिद्यति । क्लेदिष्यति । क्लेत्स्यति । अक्लिद्यत् ॥

८ क्लिश्-उपतापे । (आत्मने०)—(क्लेश भोगना)—क्लिश्यते । क्लेशिष्यते । अक्लिश्यत ॥ (कइयों की संमति में यह धातु परस्मै० में भी है) —क्लिश्यति । इ०

९ क्षम्-सहने ।-(परस्मै०)-(सहना) क्षाम्यति । क्षमी-
ष्यति, । अक्षाम्यत ॥

१० क्षिप्-प्रेरणे ।-(फेंकना)-क्षिप्यति । क्षेप्स्यति । अक्षि-
प्यत ॥

११ क्षुध्-बुभुक्षायाम् ।-(भूख लगना)-क्षुध्यति । क्षोत्स्यति।
अक्षुध्यत ॥

१२ क्षुभ्-संचलने ।-(हलचल मचनी)-क्षुभ्यति । क्षोभि
ष्यति । अक्षुभ्यत ॥

१३ खिद्-दैन्ये ।-(आत्म०)-(खेद करना)-खिद्यते ।
खेत्स्यते । अखिद्यत ॥

१४ गृध् (अभिकांक्षायाम्)-(पर०)-(लोभ करना)-
गृध्यति । गर्धिष्यति । अगृध्यत ॥

१५ जन्-प्रादुर्भावे ।-(आत्म०)-(उत्पन्न होना)-जायते ।
जनिष्यते । अजायत ।

१६ जॄ-वयोहानौ ।-(पर०)-(जीर्ण होना)-जीर्यति ।
जरीष्यति, जरिष्यति । अजीर्यत ॥

१७ डी-विहायसागतौ ।-(आत्म०)-(उड़ना)-डीयते । डयि
ष्यते । अडीयत ॥

१८ तुष्-तुष्टौ ।-(पर०)-(सतुष्ट होना)-तुष्यति । तोक्ष्यति ।
अतुष्यत ॥

१९ तृप्-तृप्तौ ।-(तृप्त होना)—तृप्यति । तर्पिष्यति । अतृप्यत्

२० तृष्-पिपासायाम् ।-(प्यास लगना)—तृष्यति । तर्षिष्यति । अतृष्यत् ॥

२१ त्रस्-उद्वेगे ।-(कष्ट होना)—त्रस्यति । त्रसिष्यति । अत्रस्यत् ।

२२ दम् उपशमे ।-(दमन करना)—दाम्यति । दमिष्यति । अदाम्यत् ॥

२३ दिव्-क्रीडायाम् ।-(खेलना)—दीव्यति । देविष्यति । अदीव्यत् ।

२४ दीप्-दीप्तौ ।-(आत्म०)—(प्रकाशना)—दीप्यते । दीपिष्यते । अदीप्यत ॥

२५ दुष्-वैकृत्ये ।-(पर०)—(दोषयुक्त होना)—दुष्यति । दोक्ष्यति । अदुष्यत् ॥

२६ द्रुह्-जिघांसायाम् ।-(घात करना)—द्रुह्यति । द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति । अद्रुह्यत् ।

२७ नश्-अदर्शने ।-(नाश होना)—नश्यति । नशिष्यति, नंक्ष्यति । अनश्यत् ।

२८ पुष् पुष्टौ ।-(पुष्ट होना)—पुष्यति । पोक्ष्यति । अपुष्यत्

२९ पूर-आप्यायने ।-(आत्म०)—(भरना)—पूर्यते । पूरिष्यते । अपूर्यत ।

३० भ्रंश-अधः पतने ।–(पर०)—(गिरना) —भ्रश्यति ।
भ्रंशिष्यति । अभ्रश्यत ॥

३१ मद्-हर्षे ।–(आनन्द होना)—माद्यति । मदिष्यति ।
अमाद्यत ।

३२ मन्-ज्ञाने ।–(आत्म०)—(विचार करना)—मन्यते ।
मंस्यते । अमन्यत ।

३३ मुह्-वैचित्ये ।–(मोहित होना)—मुह्यति । मोहिष्यति,
मोक्ष्यति । अमुह्यत ।

३४ मृग्-अन्वेपणे ।(ढूंढना)—मृग्यति । मर्गिष्यति । अमृग्यत

३५ युज्-समाधौ ।(चित्त स्थिर करना)-युज्यते । योक्ष्यते ।
अयुज्यत ।

३६ युध्-संप्रहारे ।–(युद्ध करना)—युध्यते । योत्स्यते ।
अयुध्यत ।

३७ लुभ्-गार्ध्ये ।–(पर०)—(लोभ करना)—लुभ्यति ।
लोभिष्यति । अलुभ्यत ॥

३८ विद्-सत्तायाम् । (आत्म०)—(होना, रहना)-विद्यते ।
वेत्स्यते । अविद्यत ।

३६ शक्-मर्पणे । (उभयपद)—(सहना)—शक्यति, शक्यते
शकिष्यति, शकिष्यते, शक्ष्यति, शक्ष्यते ।
अशक्यत, अशक्यत ।

४० शम्–उपशमे ।–(पर०)–(शांत होना)–शाम्यति । शमिष्यति । अशाम्यत् ।

४१ शुध्–शौचे ।–(शुद्ध करना)–शुध्यति । शोत्स्यति । अशुध्यत् ।

४२ सिध्–सिद्धौ ।–(सिद्ध करना)–सिध्यति । सेत्स्यति असिध्यत् ।

४३ सीव्–तन्तुवाये ।–(सीना)–सीव्यति । सेविष्यति । असीव्यत् ।

४४ हृष्–तुष्टौ ।–(सन्तुष्ट होना)–हृष्यति । हर्षिष्यति । अहृष्यत् ।

वाक्य ।

स अहृष्यत् ।	वह सन्तुष्ट हुआ ।
तौ अशाम्यताम् ।	वे दोनो शांत हुए ।
स उपदेशं न मन्यते ।	वह उपदेश नहीं मानता ।
बालकाः पुष्यंति ।	लड़के पुष्ट होते हैं ।

पश्य स कथं सूच्या वस्त्रं सीव्यति । तौ सीव्यतः । ते सर्वेऽपि इदानीं न सीव्यन्ति । स इदानीं स्वगृहे एव विद्यते । राजा राष्ट्राद् भ्रश्यति । आत्मा नैव नश्यति परं शरीरं नश्यति । स जलेन तृप्यति । अरे त्वं कथं तोक्ष्यसि । तौ वने मृगान्

मृगपतः । रावण रामेण सह युध्यते । मुह्यति मे मनः । शरीरं जीर्यति परन्तु धनाशा जीर्यतोऽपि न जीर्यति । पक्षिणः आकाशे डीयन्ते । त्वं किमर्थं खिद्यसे । तस्य मनः क्षुभ्यति ।

—।०।—

पाठ ३६.

प्रभवः—उत्पत्ति	दुर्गं—कठिनता
अप्ययः—नाश	अतितॄ—पार होना
सौम्यः—शांत	विद्यामहे—जान सकते हैं
आहूयमान—बुलाया हुआ	तुष्टः—संतुष्ट
उपघातः—कष्ट	निधनं—मृत्यु, नाश
सभ्य—सज्जन	संकाश—सदृश
तलं—स्थान	खद्योतः—जुगनु
शास्तु—राज्य चलाने के लिये	सचिवः—प्रधान
ज्योत्स्नः—प्रकाश चांदना	गुप्तिः—रक्षण
रजस्वला—ऋतुमती स्त्री	मलः—कूड़ा
कोपः—घमाना	लिप्सु—इच्छा करना

समास ।

असौम्यदर्शनाः—न सौम्यं असौम्यं । असौम्यं दर्शनं येषां ते ।

फलमूलाशिनाः—फलं च मूलं च फलमूले । फलमूले च ह्नुय-

श्नीति फलमूलाशिनाः ॥

युधिष्ठिरः—युधि स्थिरः ।

शरीरसंगुप्तिः—सम्यक् गुप्तिः संगुप्तिः । शरीरस्य सगुप्तिः ।

महाप्राज्ञः—महान् चासौ प्राज्ञश्च ।

विट्शूद्रजीविका—विट् च शूद्रश्च विट्शूद्रौ । तयोः जीविका ।

—:o:—

वाचनपाठः । महाभारतम् ।

ईश्वरः सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भक्ता नारायणं देव दुर्गाण्यतितरंति ते ॥ १ ॥
यु० उ० असौम्याः सौम्य रूपेण सौम्याश्चासौम्यदर्शनः ।
ईदृशान्पुरुषांस्तात कथ विद्यामहे वयम् ॥ २ ॥
भि० उ० नृपेणा हूयमानस्य यत्तिष्ठति भय हृदि ।
न तत्तिष्ठति तुष्टानां वने मूलफलाशिनाम् ॥ ३ ॥
अपराधैर्न सांर्थतो भृत्याः शिष्टावराधिपैः ।
उपघातैर्यथा भृत्या दूषिता निधनंगताः ॥ ४ ॥
असम्याः सम्यसकाशाः सभ्याश्चा सभ्यदर्शना ।
दृश्यते विविधा भावास्तेषु युक्तपरीक्षणम् ॥ ५ ॥

सौम्यरूपेण शांतरूपेण 'असौम्याः अशांताः । सौम्या मनुष्या असौम्यदर्शनाः । असौम्य दर्शनं यषां ते असौम्य-दर्शना ॥ २ ॥ यत् भय नृपेण राज्ञा आहूयमानस्य हृदि हृदये तिष्ठति । तद् भयं वने फलमूलाशिनां फलमूलभोजिनां हृदये न तिष्ठति ॥३॥

न चैवास्ति तलं व्योम्नि खद्योते न हुताशनः ।
तस्मात्प्रत्यक्षदृष्टोऽपि युक्तोह्यर्थं परीक्षितुम् ॥ ६ ॥
यु० उ० यद्धितं राज्यतन्त्रस्य कुलस्य च सुखोदयम् ।
अन्नपाने शरीरेच हितं यत्तद्ब्रवीहिमे ॥ ७ ॥
न च प्रशास्तुमेकेन राज्यं शक्यं युधिष्ठिर ।
कुलीनं शिक्षितं प्राज्ञं सहिष्णुं देशजं तथा ॥ ८ ॥
सचिवं यः प्रकुरुते न चैनमवमन्यते ।
तस्य विस्तीर्यते राज्यं ज्योत्स्ना ग्रहपतेरिव ॥ ९ ॥
दुष्टानां निग्रहो दंडः हिरण्यं बाह्यतः क्रिया ।
व्यङ्गत्वं च शरीरस्य वधो नाल्पस्य कारणात् ॥ १० ॥
धर्ममूलः सदैवार्थः कामोर्थ फलमुच्यते ।
सङ्कल्प मूलास्ते सर्वे सङ्कल्पो विषयात्मकः ॥ ११ ॥
धर्माच्छरीर संगुप्तिर्धर्मार्थं चार्थउच्यते ।
कामो रतिफलश्चात्र सर्वे ते च रजस्वलाः ॥ १२ ॥

व्योम्नि आकाशे तलं नास्ति । तथा खद्योते हुताशनः अग्निः नास्ति ॥ यत् राज्य तन्त्रस्य हितं । कुलस्य च यत् सुखोदयम् । अन्नपाने शरीरे च यत् हितम् । तत् मे ब्रवीहि ॥ ७ ॥ हे युधिष्ठिर एकेन राज्य प्रशास्तुं न च शक्यं । अतः कुलीनं शिक्षितं विद्या सम्पन्न प्राज्ञं विशेष ज्ञानसम्पन्न सहिष्णुं सहनशक्ति युक्तं देशज स्वराष्ट्रजं यः सचिवं कुरुते ।

धर्मात् शरीरस्य संगुप्तिः संरक्षणं भवति । धर्मस्य अर्थं धर्मकारणाय एव अर्थः द्रव्यं उच्यते ॥ १२ ॥

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम् ।
संप्रमोदमलः कामोः भूयः स्वगुण वर्धितः ॥ १३ ॥
धर्मं सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम् ।
शील मूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः ॥ १४ ॥
अद्रोहः सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते ॥ १५ ॥
राज्ञः कोपक्षयादेव जायते बल संक्षयः ।
कोपश्च जनयेद्राजा निर्जलेभ्यो यथाजलं ॥ १६ ॥
क्षत्रियो वृत्ति संरोधे कस्य नादातुमर्हति ।
अन्यत्र तापसस्याश्च ब्राह्मणस्याश्च भारत ॥ १७ ॥
भैक्ष्य चर्या न विहिता न च विट्शूद्र जीविका ।
सर्वं धनवता प्राप्य सर्वं तरति कोपवान् ॥ १८ ॥
तस्य धर्मेण लिप्सेत नाधर्मेण कदाचन ॥ १९ ॥

सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा वाचा अद्रोहः न द्रोहः कर्तव्यः । सर्वभूतेषु च अनुग्रहः दानं च कर्तव्यम् ।' एतत् शील प्रशस्यते ॥ १५ ॥ भैक्ष्यचर्याभिक्षावृत्तिः न विहिता न योग्या । न च विट् शूद्र जीविका यथा विशः वैश्या शूद्राश्च जीवन्ति तथा जीविका न प्रशस्ता ॥ १८ ॥

—:०:—

पाठ ३७.

पञ्चम गण के धातु ।

पंचम गण के धातुओं के लिये धातु और प्रत्यय के बीच में वर्तमान और भूत कालों में 'नु' चिन्ह लगता है।

सु–स्नपन पीडन स्नानेषु । (स्नान करना, रस निकालना इ०)

उभयपद ।

परस्मैपद ।

वर्तमान—सुनोति, सुनुतः, सुन्वन्ति । सुनोषि, सुनुथः, सुनुथ । सुनोमि, सुनुवः–सुन्वः, सुनुमः–सुन्मः ।

भूत—असुनोत, असुनुताम, असुन्वन् । असुनोः, असुनुतम्, असुनुत । असुनवम्, असुनुव—असुन्व, असुनुम—असुन्म ।

भविष्य—सोष्यति । सोष्यसि । सोष्यामि ।

आत्मनेपद

वर्तमान—सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते । सुनुषे, सुन्वाथे, सुनुध्वे । सुन्वे, सुनुवहे—सुन्वहे, सुनुमहे—सुन्महे ।

भूत—असुनुत, असुन्वाताम्, असुन्वत । असुनुथाः असुन्वाथाम्, असुनुध्वम् । असुन्वि, असुनुवहि—असुन्वहि, असुनुमहि—असुन्महि ।

भविष्य—सोष्यते । सोष्यसे । सोष्ये ।

साध्-संसिद्धौ ।—सिद्ध होना)—परस्मै०

वर्तमान—साध्नोति, साध्नुतः, साध्नुवन्ति । साध्नोषि, साध्नुथः, साध्नुथ । साध्नोमि, साध्नुवः, साध्नुमः ।

भूत—असाध्नोत, असाध्नुताम्, असाध्नुवन् । असाध्नोः, असाध्नुतम्, असाध्नुत । असाध्नुवम, असाध्नुव, असाध्नुम

भविष्य—सात्स्यति । सात्स्यसि । सात्स्यामि ।

अश्—व्याप्तौ ।—(व्यापना)—आत्मने० ।

वर्तमान—अश्नुते, अश्नुवाते, अश्नुवते । अश्नुषे, अश्नुवाथे, अश्नुध्वे । अश्नुवे, अश्नुवहे, अश्नुमहे ।

भूत—आश्नुत, आश्नुवाताम्, आश्नुवत । आश्नुथाः, आश्नुवाथाम्, आश्नुध्वम् । आश्नुवि, आश्नुवहि, आश्नुमहि ।

भविष्य—अशिष्यते, अक्ष्यते । अशिष्यसे, अक्ष्यसे । अशिष्ये, अक्ष्ये ॥

आप् व्याप्तौ ।—(व्यापना, पाना)—परस्मै०

वर्तमान—आप्नोति, आप्नुतः, आप्नुवन्ति । आप्नोषि, आप्नुथः, आप्नुथ । आप्नोमि, आप्नुवः, आप्नुमः ।

भूत—आप्नोत, आप्नुताम्, आप्नुवन् । आप्नोः, आप्नुतम्, आप्नुत । आप्नुवम, आप्नुव, आप्नुम ।

भविष्य—आप्स्यति । आप्स्यसि । आप्स्यामि ।

(इस धातु के चकारादि और मकारादि प्रत्यय होने पर दो दो रूप होते हैं:—चिनुवः—चिन्वः,—चिनुमहे,— चिन्महे)

धातु ।

१ मि—क्षेपणे ।—(फेंकना)–(उभय पद)–मिनोति, मिनुते । मास्यति, मास्यते । अमिनोत्, अमिनुत ।

२ कृ—हिंसायाम् ।—(हिंसा करना)—(उ० प०) कृणोति, कृणुते । करिष्यति, करिष्यते । अकृणोत्, अकृणुत ।

३ वृ—वरणे ।—(पसन्द करना)—(उ० प०) वृणोति, वृणुते । वरीष्यति, वरीष्यते । वरिष्यति, वरिष्यते । अवृणोत्, अवृणुत ।

४ धु—कम्पने ।—(हिलना)—(उ० प०)—धुनोति, धुनुते । धोष्यति, धोष्यते। अधुनोत्, अधुनुत ।

वाक्य ।

१ सीता रामचन्द्रं अवृणोत्···सीताने रामचन्द्र को पसंद किया

२ अहं त्वां वरिष्यामि । ···मैं तुझे पसन्द करूंगा ।

३ ते तत्र गन्तुं न शक्नुवन्ति ।···वे वहां नहीं जा सकते ।

४ अहं नाशक्नुवम् तत्कर्म कर्तुम् । ···मैं समर्थ नहीं था वह कर्म करने के लिये ।

५ मनुष्यः स्वकर्मणः फलं अश्नुते । ...मनुष्य अपने कर्म का फल भोगता है ।

६ स सोमं सुनोति । ...वह सोम का रस निकालता है

७ स सुखं आप्नोति । ...वह सुख प्राप्त करता है ।

८ वयं सर्वे सुखं आप्नुमः । ...हम सब सुख प्राप्त करते हैं ।

९ स तदा वक्तुं नाशक्नोत् । वह तब बोल न सका ।

१० यज्ञार्थं सोमं स न सुनुते । ...यज्ञ के लिये सोम का रस वह नहीं निकालता ।

११ त्वं फलानि चिनोषि किम् । क्या तू फल चुनता है ।

१२ वस्त्रैः स पुस्तकानि स्तृणोति । कपड़ों से वह पुस्तक ढांपता है

१३ समुद्रस्य पारं गन्तुं स नाशक्नोत् । समुद्र के पार जाने के लिये वह समर्थ न हुआ ।

१४ धर्माचरणेन मनुष्यः सुखं आप्स्यति । ...धर्माचरण से वह सुख प्राप्त करेगा ।

पाठ ३८.

बहुद्वारः—जिसके लिये बहुत दरवाजे हैं	अभिजानाति—जानता है
असारः—निःसार	पर्येति—समझता है
विरागः—अप्रीति	यतेत—प्रयत्न करे
शोच्य—शोक करने योग्य	पाशः—बंधन
विषीद्—शोक करना	आविष्ट—प्राप्त
सैकतः—रेत वाला	निपीड्यते—पीड़ित किया जाता है।
सेतुः—पुल	अर्णवः—समुद्र
जीर्णः—वृद्ध	मग्नः—डूबा हुआ
वृष्णी—भेड़यी	जुगुप्सेत—निंदा करे
उरण—बकरा	ईहा—इच्छा
अपनयन—ले जाना	गोष्ठः—स्थान
जातु—कदाचित्	आयांती-आने वाली
विफल—निष्फल	अंतकः-मृत्यु

समास ।

बहुद्वारः—बहूनि द्वाराणि यस्य सः ।

विफला—विगतं फलं यस्याः सा ।

असारवत्—न विद्यते सारं यत्र तदसारम् । असारं अस्य अस्तीति असारवत् ।

शोकपंकार्णवः—शोक एव पंकः शोकपंकः । तस्य अर्णवः ।

मृत्युसेना—मृत्योः सेना ।

वाचनः पाठः । महाभारतम् ।

धर्माः पितामहेनोक्ता राज धर्माश्रिताः शुभाः । यु० उ०
धर्ममाश्रमिणांश्रेष्ठं वक्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १ ॥
सर्वत्र विहितोधर्मः सत्यः प्रेत्य तपः फलम् । भी० उ० ॥
बहुद्वारस्य धर्मस्य नेहास्ति विफलाक्रिया ॥ २ ॥
यस्मिन्यस्मिंस्तु विषये यो यो याति विनिश्चयम् ।
स तमेवाभिजानाति नान्यं भरतसत्तम ॥ ३ ॥
यथा यथा च पर्येति लोकतंत्रमसारवत् ।
तथा तथा विरागोऽत्र जायते नात्र संशयः ॥ ४ ॥
एवं व्यवसिते लोके बहु दोषे युधिष्ठिर ।
आत्ममोक्ष निमित्तं वै यतेत मतिमान्नरः ॥ ५ ॥
किन्तु मुह्यसि मूढस्त्वं शोच्यः किमनुशोचसि ।
यदा त्वामपि शोचन्तः शोच्या यास्यन्ति तां गतिम् ॥ ६ ॥
अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः ।
न त्वासौ वेद न त्वं तं कः सन् किमनुशोचसि ॥ ७ ॥

सर्वत्र सत्यः धर्मः विहितः । प्रेत्य मरणोत्तरं तपः फलम् । बहुद्वारस्य धर्मस्य इह विफला निष्फला क्रिया नास्ति ॥ २ ॥ विरागः अप्रीति विगतः रागः प्रीतिः ॥४॥ किं किमर्थं तु मुह्यसि मूढो भवसि । यदा त्वां शोचन्तः अपि तां एव गतिं यास्यन्ति ।

आदर्शनात् आपतितः आगतः । जीवः जन्म प्राप्तः वा पूर्वं अदृश्यः । पुनः च किंचित्‌कालादूर्ध्वम् अदर्शनंगतः मृत्युं प्राप्तः

स्नेहपाशैर्बहुविधैराविष्टविषया जनाः ।
अकृतार्थाश्च सीदन्ते जलैः सैकत सेतवः ॥ ८ ॥
स्नेहेन तिलवत्सर्वं सर्गचक्रे निपीड्यते ।
पुत्रदारकुटुम्बेषु प्रसक्ताः सर्वमानवाः ॥ ९ ॥
शोकपंकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।
येच मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः ॥
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ १० ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं प्रिय वा यदिवाप्रियम् ।
प्राप्त प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥ ११ ॥
पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदिवाऽशुभं ।
प्राज्ञं मूढ तथा शूरं भजते यादृशं कृतम् ॥ १२ ॥
एतां बुद्धिसमास्थाय सुखमास्ते गुणान्वितः ।
सर्वकामाञ्जुगुप्सेत क्रोधं कुर्वीत पृष्ठतः ॥ १३ ॥
पुष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्र गतमानसम् ।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति ॥ १४ ॥

ये च मूढतमा अत्यन्तमूर्खा ये च बुद्धेः परं पारं गताः ते जनाः सुखं एधन्ते प्राप्नुवन्ति । अन्तरितः जनः मध्यमः मानवः क्लिश्यति दुःखं प्राप्नोति ॥ १० ॥

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मात्वां कालोऽत्यगादयम् ।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतम् ॥ १५ ॥
एव मीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे ॥ १६ ॥
मृत्योर्वा मुखमेतद्वै या ग्रामे वसतो रतिः ।
देवानामेष वै गोष्ठो यदरण्यमिति श्रुतिः ॥ १७ ॥
न हिंसयति यो जन्तून्मनोवाक्काय हेतुभिः ।
जीवितार्थाय नयनैः प्राणिभिर्न स हिंस्यते ॥ १८ ॥
न मृत्युसेनामायान्तीं जातु कश्चित्प्रबाधते ।
ऋते सत्यमसत्याज्यं सत्येनैवांतक जयेत् ॥ १९ ॥

अद्य एव यत् श्रेयः अस्ति तत् कुरु । त्वां अयं कालः मा अत्यगात् । अस्य कृत वा न कृत इति मृत्युः न प्रतीक्षते ॥ १५ ॥ यद् अरण्य [illegible] देवानां गोष्ठः स्थानं इति श्रुतिः । या [illegible] ग्रामे वसतो रति एतद्वै मृत्योः मुखम् ॥ १७ ॥

पाठ ३९.

सप्तम गण के धातु ।

सप्तमगण का चिन्ह 'न' है और वह धातु के अन्तिम स्वर के पश्चात और अन्तिम व्यंजन के पूर्व लगता है ।

पिष्-संचूर्णने ।—(परस्मै०)—पीसना ।

पिष् =(प-इ-ष्)+न=(प-इ-नष्)=पिनष्+ति = पिनष्टि । इस प्रकार रूप बनते हैं । द्विवचन बहुवचन के प्रत्ययों से पूर्व नकार के अकार का लोप होता है । जैसाः—पिनष्+ तः=पिन्ष्—तः=पिष्टः । षकार के पास आये हुए तकार का टकार बनता है । और नकार का अनुस्वार बन जाता है ।

वर्तमानकाल ।

पिनष्टि	पिंष्टः	पिंशन्ति
पिनक्षि	पिंष्ठः	पिंष्ठ
पिनष्मि	पिंष्वः	पिंष्मः

भूतकाल ।

अपिनट्	अपिंष्टाम्	अपिंषन्
अपिनट्	अपिंष्टम्	अपिंष्ट
अपिंषम्	अपिंष्व	अपिंष्म

भविष्य—पेक्ष्यति । पेक्ष्यसि । पेक्ष्यामि ॥

युज्-योगे ।(उ० प०)=योग करना ।

परस्मैपद।

वर्तमान—युनक्ति, युंक्तः, युजन्ति । युनक्षि, युंक्थः, युंक्थ । युनज्मि, युंज्वः, युंज्मः ॥

भूत—अयुनक्, अयुंक्ताम्, अयुंजन् । अयुनक्, अयुंक्तम्, अयुंक्त । अयुनजम्, अयुंज्व, अयुंज्म ।

भविष्य—योक्ष्यति ।

आत्मनेपद ।

वर्तमान—युंक्ते, युंजाते । युंक्षे, युंजाथे । युंग्ध्वे । युंजे, युंज्वहे, युंज्महे ।

भूत—अयुंक्त, अयुंजाताम्, अयुंजत । अयुंक्थाः, अयुंजाथाम्, अयुंग्ध्वम् । अयुंजि, अयुंज्वहि, अयुंज्महि ।

(आत्मनेपद के वर्तमान भूत के सब प्रत्ययों के पूर्व नकार के अकार का लोप होता है ।)

भविष्य—योक्ष्यते ।

रुध्-आवरणे ।—(उ० प०)—आवरण करना ।

परस्मैपद ।

वर्तमान—रुणद्धि, रुन्द्धः, रुन्धन्ति । रुणत्सि, रुन्द्धः, रुन्द्ध । रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः ।

भूत—अरुणत्, अरुन्द्धाम्, अरुन्धन् । अरुणत्—अरुणः, अरुन्द्धम्, अरुन्द्ध । अरुणधम्, अरुन्ध्व, अरुन्ध्म ।

भविष्य—रोत्स्यति।

आत्मनेपद।

वर्तमान—रुन्द्धे, रुन्धाते, रुन्धते। रुन्त्से, रुन्धाथे रुन्द्ध्वे।
रुन्धे, रुन्ध्वहे, रुन्ध्महे।

भूत—अरुन्द्ध, अरुन्धाताम्, अरुन्धत। अरुन्द्धाः, अरुन्धाथाम्, अरुन्द्ध्वम्। अरुन्धि, अरुन्ध्वहि, अरुन्ध्महि।

भविष्य—रोत्स्यते।

इन्ध्–दीप्तौ। (आत्म०)

वर्तमान—इन्द्धे, इन्धाते, इन्धते। इन्त्से, इन्धाथे, इन्द्ध्वे।
इन्धे, इन्ध्वहे, इन्ध्महे।

भूत—ऐन्द्ध, ऐन्धाताम्, ऐन्धत। ऐन्द्धाः, ऐन्धाथाम्, ऐन्द्ध्वम्।
ऐन्धि, ऐन्ध्वहि, ऐन्ध्महि।

भविष्य—इन्धिष्यते।

धातु।

१ भिद्–विदारणे।–(परस्मै०)—(भेदन करना) भिनत्ति। अभिनत्। भेत्स्यति॥ (आत्म०) भिन्ते। अभिन्त भेत्स्यते।

भुज्–पालने। (पालन करना, खाना)—(परस्मै०)—भुनक्ति। अभुनक्। भोक्ष्यति। (आत्म०) भुङ्क्ते। अभुङ्क्त। भोक्ष्यते।

पाठ ४०

सर्वसाम्यं—सर्व समता
अनायासः—श्रमरहितता
तृष्णा—इच्छा
षोडशी—सोलहवीं
कला—हिस्सा, भाग
अस्थिन्—हड्डी
रुज्—रोग
क्षेत्रज्ञः—क्षेत्र जानने वाला
हिमवत—हिमालय पर्वत

निर्वेदः—वैराग्य
अविधित्सा—निरिच्छा
पुलाका—छोटा पत्थर
पुत्तिका—मक्खी
मेदः—मेदा
स्नायु—मांस
अयोमय—लोहमय
अध्यवसानं—निश्चय
काले—योग्य समय में

समास

तृष्णाक्षयसुखं—तृष्णायाः क्षयः। तस्य सुखम्।

लघ्वाहारः—लघुः आहारः यस्य सः।

अध्यात्मविनिश्चयः—अध्यात्मस्य विनिश्चयः।

क्षेत्रज्ञः—क्षेत्रं जानातीति।



भी० उ० आपोमयमिदं सर्वमापो मूर्तिः शरीरिणाम् ।
तत्रात्मा मानसो ब्रह्मा सर्वं भूतेषु लोककृत् ॥२७॥
आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः ।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः ॥२८॥
स पूर्वापररात्रेषु युञ्जानः सततं बुधः ।
लघ्वाहारो विशुद्धात्मा पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥२९॥
मानसोऽग्निः शरीरेषु जीव इत्यभिधीयते ।
सृष्टिः प्रजापतेरेषा भूताध्यात्मविनिश्चये ॥३०॥
चक्षुरालोकनायैव संशयं कुरुतेमनः ।
बुद्धिरध्यवसानाय क्षेत्रज्ञः साक्षिवत्स्थितः ॥३१॥

यु० उ० अस्माल्लोकात्परो लोकः श्रूयते न च लभ्यते ।
तमहं ज्ञातु मिच्छामि तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥३२॥

भी० उ० उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वे गुणान्विते ।
पुण्यः क्षेम्यश्च काम्यश्च स परोलोक उच्यते ॥३३॥
स स्वर्गसदृशो देशस्तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः ।
काले मृत्युः प्रभवति स्पृशति व्याधयो न च ॥३४॥

यः प्राकृतैः गुणैः संयुक्त क्षेत्रज्ञ अस्ति स एव आत्मा इत्युच्यते । तैः प्राकृतैः गुणै परमात्मा विनिर्मुक्तः अस्ति ।

अस्मात् लोकात् परः श्रेष्ठः लोकः अन्यः अस्ति इति श्र स परो लोको न च लभ्यते प्राप्यते दृश्यते वा । तं पर लोकं अहम् ज्ञातुम् इच्छामि । भवान् तत् वक्तुमर्हति ॥३२॥

पाठ ३९ ।

अष्टम गण के धातु ।

अष्टम गण के धातुओं के लिये 'उ' चिन्ह लगता है ।

तन् विस्तारे । (फैलाना)—उभयपद ।

परस्मैपद ।

वर्तमानकाल ।

तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
तनोषि	तनुथः	तनुथ
तनोमि	{ तनुवः { तन्वः	{ तनुमः { तन्मः

भूतकाल ।

अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
अतनवम्	{ अतनुव { अतन्व	{ अतनुम { अतन्म

भविष्य—तनिष्यति ।

आत्मनेपद ।

वर्तमान—तनुते, तन्वाते, तन्वते, तनुषे, तन्वाथे, तनुध्वे । तन्वे, तनुवहे, तन्वहे, तनुमहे—तन्महे ।

भूत—अतनुत, अतन्वाताम् अतन्वत । अतनुथाः, अतन्वाथाम् अतनुध्वम् । अतन्वि, अतनुवहि-अतन्वहि, अतनुमहि-अतन्महि ।

भविष्य-तनिष्यते ।

कृ—करणे (करना)

परस्मैपद ।

वर्तमान—करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति । करोषि, कुरुथः, कुरुथ । करोमि, कुर्वः, कुर्मः ।

भूत—अकरोत्, अकुरुताम्, अकुर्वन् । अकरोः, अकुरुतम्, अकुरुत । अकरवम् अकुर्व, अकुर्म ।

भविष्य—करिष्यति ।

आत्मनेपद ।

वर्तमान—कुरुते, कुर्वाते, कुर्वते । कुरुषे, कुर्वाथे, कुरुध्वे । कुर्वे, कुर्वहे, कुर्महे ।

भूत—अकुरुत, अकुर्वाताम्, अकुर्वत । अकुरुथाः, अकुर्वाथाम्, अकुरुध्वम् । अकुर्वि, अकुर्वहि, अकुर्महि ।

भविष्य—करिष्यते ।

धातु ।

१ मन् अवबोधने (मानना)-(आत्म०)-मनुते । अमनुत मनिष्यते ।

२ वन् याचने (मांगना)-(आत्म०)-वनुते । अवनुत वनिष्यते ।

३ घृण् दीप्तौ (प्रकाशना)-(पर०)-घृणाति । अघृणोत् घृणिष्यति ।

वाक्य ।

त्वं किं करोषि । तू क्या करता है ।

स तत्र गमनं ना करोत् । उसने वहां गमन नहीं किया ।

ज्ञानी ज्ञानं तनुते । ज्ञानी ज्ञान फैलाता है ।

स न मनुते किम्? क्या वह नहीं मानता ।

असंशयं स तत्कर्म करिष्यति । निःसन्देह वह वह कर्म करेगा ।

स इदानीं विवादं न करिष्यति । वह अब विवाद नहीं करेगा ।

आगच्छ भोजनं कुर्वहे । आओ [हम दोनों] भोजन करें ।

त्वं कदा स्नानं करिष्यसि । तू कब स्नान करेगा ।

ते इदानीं अध्ययन कुर्वन्ति । स विज्ञान तनुते । स न मनुते । यूय किं कुरुथ । वय हवन कुर्म० । स न भिक्षां वनुते । स तव आज्ञा न मनिष्यते ।

पाठ ४२.

हृषीकेशः···श्रीकृष्ण
रश्मिः···लगाम
द्विरदः···हाथी
रञ्जनं···खुशी
उत्थानँ···सम्मान देने के लिए उठना
उद्यम्य··उठाकर
निगृह्णीयात्···पकड़ा जाय
कोशः···खजाना
परिहासः···हँसी
उपजीवन्···नौकर

अभिवाद्य···नमस्कार करके
पर्यपृच्छत्···पूछा
प्रग्रहणं···काबू रखना
कष्टाकुली···कष्टमय
ऋते···छोड़ कर
लंघ्यः···उल्लंघनीय
तीक्ष्णः···कठोर
दयितः···प्रिय
हित्वा··छोड़ कर
संघर्षः· अति निकटता
लङ्घ्···उल्लंघन करना

समास ।

द्विरदः···द्वौ रदौ दन्तौ यस्य सः ।
सिद्धिकारणं···सिद्धेः कारणम् ।
गुणवान्··गुणा अस्य सन्तीति ।
मृदुधर्मः···मृदुः धर्मः यस्य सः ।
धर्मापेक्षी···धर्मं अपेक्षते इति ।
स्पष्टदण्डः···स्पष्टः दण्डः यस्य सः ।
तद्वचः···तस्य वचः ।

—:o:—

वाचनपाठः । महाभारतम् ।

हन्त धर्मान्प्रवक्ष्यामि दृढे वाङ्मनसी मम ।
युधिष्ठिरस्तु धर्मात्मा मां धर्माननु पृच्छतु ॥ १ ॥
प्रणिपत्य हृषीकेशमभिवाद्य पितामहम् ।
अनुमान्य गुरून्सर्वान् पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
राज्ञां वै परमोधर्म इति धर्मविदो विदुः ।
महान्तमेतं भारं च मन्ये तद्ब्रूहि पार्थिव ॥ ३ ॥
यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्यांकुशो यथा ।
नरेन्द्र धर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम् ॥ ४ ॥
तत्र चेत्संप्रमुहोत धर्मे राजर्षि सेविते ।
लोकस्य संस्था न भवेत्सर्वं च व्याकुली भवेत् ॥ ५ ॥
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे ।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ६ ॥
आदावेव कुरुश्रेष्ठ राजा रञ्जनकाम्यया ।
देवतानां द्विजानां च वर्तितव्यं यथाविधि ॥ ७ ॥

यथा हि अश्वस्य रश्मयः । यथा द्विरदस्य गजस्य अंकुशः तथा लोकस्य धर्मः प्रग्रहणं स्मृतम् ॥ ४ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ आदौ प्रथमम् एव राज्ञा नृपेण रञ्जन काम्यया लोकरञ्जन हेतुना देवतानां द्विजानां ब्राह्मणानां विदुषां च यथा विधि विधिम् अनतिक्रम्य वर्तितव्यम् ॥ ७ ॥

देवतान्यर्चयित्वा हि ब्राह्मणांश्च कुरूद्वह ।
उत्थानेन सदा पुत्र प्रयतेथा युधिष्ठिर ॥ ८ ॥
नह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत् ।
साधारणं द्वय ह्येतद्दैवमुत्थानमेव च ॥ ९ ॥
पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चित्य मुच्यते ।
विपन्ने च समारम्भे सन्तापं मा स्म वै कृथाः ॥ १० ॥
नहि सत्याद्दृते किंचिद्राज्ञां वै सिद्धिकारकं ।
सत्ये हि राजा निरतः प्रेत्य चेह च नन्दति ॥ ११ ॥
गुणवान् शीलवान्दान्तो मृदुधर्मो जितेन्द्रियः ।
सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत् सदा श्रियः ॥ १२ ॥
मृदुर्हि राजा सततं लंघ्यो भवति सर्वशः ।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय ॥ १३ ॥
अदंड्याश्चैव ते पुत्र विप्राश्च ददतांवर ।
भूतमेतत्परं लोके ब्राह्मणो नाम पाण्डव ॥ १४ ॥
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम् ।
तेषां सर्वगतं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥ १५ ॥
उद्यम्य शस्त्र मायान्तमपि वेदान्तगं रणे ।
निगृह्णीयात्स्वधर्मेण धर्मापेक्षी नराधिपः ॥ १६ ॥

राजा यदा मृदुः भवति तदा लंघ्यः उल्लंघ्यः भवति । यदा च तीक्ष्णः कठोरः भवति तदा सर्वोऽपि लोकः उद्विजते । तस्माद् उभयं आश्रय ॥ १३ ॥ शस्त्रम् उद्यम्य आयान्तं वेदान्तगं वेदान्तज्ञानिनं अपि पण्डितं रणे निगृह्णीयात् ॥ १६ ॥

पाठ ४३.

नवम गण के धातु।

नवम गण के धातुओं के लिये 'ना' चिन्ह लगता है।

क्री-द्रव्यविनिमये।—(खरीदना) उभय पद।

परस्मैपद। वर्तमानकाल।

क्रीणाति	क्रीणीत	क्रीणन्ति
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

भूतकाल।

अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

भविष्य-क्रेष्यति। क्रेष्यसि। क्रेष्यामि।

आत्मनेपद। वर्तमान काल।

क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

भूतकाल।

अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
अक्रीणीथाः	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

भविष्य—क्रेष्यते। क्रेष्यसे। क्रेष्ये।

स्तम्भ्–रोधने धारणेच। (निरोध करना और धारण करना)

परस्मैपद। वर्तमान काल।

स्तभ्नाति	स्तभ्नीतः	स्तभ्नन्ति
स्तभ्नासि	स्तभ्नीथः	स्तभ्नीथ
स्तभ्नामि	स्तभ्नीवः	स्तभ्नीमः

भूतकाल।

अस्तभ्नात्	अस्तभ्नीताम्	अस्तभ्नन्
अस्तभ्नाः	अस्तभ्नीतम्	अस्तभ्नीत
अस्तभ्नाम्	अस्तभ्नीव	अस्तभ्नीम

धातु।

१ पू-पवने।—(शुद्ध करना)—(परस्मैपद) पुनाति। अपुनात् पविष्यते। (आत्म०) पुनीते। अपुनीत पविष्यते।

२ बन्ध्–बंधने।—(बांधना)—(परस्मै०)—बध्नाति अबध्नात्। भन्त्स्यति।

३ ज्ञा—अव बोधने।—(जानना)—(परस्मै०) जानाति। अजानात् ज्ञास्यति। (आत्म०) जानीते। अजानीत। ज्ञास्यते।

४ अश्-भोजने ।–(खाना)–(परस्मै०)—अश्नाति ।
आश्नात् । अशिष्यति ।

५ ग्रह्-उपादाने ।—(ग्रहण करना)—परस्मै० गृह्णाति ।
अगृह्णात् । ग्रहीष्यति । (आत्म०)
गृह्णीते । अगृह्णीत । ग्रहीष्यते ।

६ प्री-तर्पणे ।—(तृप्त होना)–(परस्मै०) प्रीणाति । अप्री-
णात् । प्रेष्यति । (आत्म०) प्रीणीते
अप्रीणीत । प्रेष्यते ।

७ लू छेदने ।—(काटना)—(परस्मै०)—लुनाति । अलुनात् ।
लविष्यति । (आत्म०) लुनीते । अलु-
नीत । लविष्यते ।

८ वृ-वरणे । (पसन्द करना)–(परस्मै०)–वृणाति । अवृणात् ।
वरीष्यति वरिष्यति । (आत्म०) वृणीते । अवृणीत ।
वरिष्यते वरीष्यते ।

९ मन्थ–विलोडने ।—(मथन करना)–(परस्मै) मथ्नाति
अमथ्नात् । मन्थिष्यति ।

वाक्य ।

१ स वृक्षं लुनाति ।—वह वृक्ष काटता है ।

२ यत् त्वं ददासि तदहं गृह्णामि ।—जो तू देता है वह मैं
लेता हूँ ।

३ स न अजानात् ।—उस ने नहीं जाना ।

४ वायुः पुनाति सविता पुनाति । हवा स्वच्छ करती है, सूर्य शुद्ध करता है ।

५ स जलं स्तभ्नाति ।—वह जल का निरोध करता है ।

६ तौ पात्रं क्रीणीतः ।—वे दो बरतन खरीदते हैं ।

७ त्वं किमश्नासि ।—तू क्या भोजन करता है ।

८ स दधि मथ्नाति ।—वह दधि मथन करता है ।

९ तौ किं क्रीणीतः ।—वे दो क्या खरीदते हैं ?

१० ज्ञास्यसि मे भुजः कियद्र रक्षति । } तू जानेगा कि मेरा बाहू कितना रक्षण करता है ।



पाठ ४४.

जर्जर ··· दुःखित
विषयः··· देश
हयः··· घोड़ा
हर्षुलः··· आनन्दी
उत्पथ ··· बुरामार्ग
दापयेत्··· दिलाना
अवेक्षक··· दर्शक
सर्वाभिशङ्की भय का सशय करने वाला
अयोगः··· अयोग्यता
आर्जवं··· सरलता
केतनं ··· घर
उत्थानं··· शत्रु पर हमला
प्रधर्षणीय··· अपमान करने योग्य
प्रतिरूप ··· सदृश आकार
दन्तिन्··· हाथी
अवलिप्त··· गर्विष्ठ
अजातभृत्··· जिनका पोषण नहीं हुआ
अभृत··· न जानने वाला
भर्ता··· पोषक
परिष्कृत ··· सुशोभित
सर्वहर···, सब को लूटने वाला
लुब्धः··· लोभी
नयः··· न्याय, नीति
अपनयः··· अन्याय, अनीति
सीदन्··· गिरने वाला
बल··· सैन्य
निर्विष ··· विषहीन,
अचिन्त्यः··· ध्यान न देने योग्य

समास ।

दन्तिन्—दन्तौ अस्य स्तः इति: ।

सर्वहरः—सर्वं हरतीति ।

अगूढ़ विभवाः—न गूढाः अगूढाः अगूढ़ा विभवा येषां ते अगूढ़ विभवा ।
राष्ट्रनिवासिनः—राष्ट्रे निवसन्तीति । ।
निर्विषः—निर्गतं विषं यस्मात् ।

वाचनपाठः महाभारतम् ।

अर्जरं चास्य विषयं कुर्वन्ति प्रतिरूपकैः ।
क्षीरश्मिभिश्च सज्जन्ते तुल्यवेषा भवन्ति च ॥ २४ ॥
हयं वा दन्तिनं वा रथं वा नृपसत्तम ।
अभिरोहन्त्यनादृत्य हर्षले पार्थिवे मृदौ ॥ २५ ॥
गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शाश्वतः ॥ २६ ॥
न हिंस्यात्परवित्तानि देयं काले च दापयेत् ।
अभृतानां भवेद्भर्ता भृतानामन्ववेक्षकः ॥ २७ ॥
नृपतिः सुमुखश्च स्यात्स्मित पूर्वाभिभाषित ।
असद्व्यश्च समादद्यात्सद्व्यस्तु प्रतिपादयेत् ॥ २८ ॥

प्रतिरूपकैः अस्य विषयं राष्ट्रं जर्जरं कुर्वन्ति । तुल्यवेषा राजसदृशवेषाः च भृत्या भवन्ति । क्षीरश्मिभिः च संजन्ते ॥२४॥

हय अश्वं दन्तिनं गजं वा अपि रथमपि अनादृत्य राज्ञः आदरं न कृत्वा अभिरोहन्ति ॥ २५ ॥

शूरान्भक्तानसंहार्यान्कुले जाता न रोगिनः ।
विद्याविदो लोकविदः परलोकान्ववेक्षकान् ॥ २९

सहायान्सततं कुर्याद्राजा भूतिपरिष्कृतः ।
तैश्चतुल्यो भवेद्भोगैश्छत्र मात्राज्ञयाधिकः ॥ ३०

सर्वाभिशंकी नृपतिर्यश्च सर्वहरो भवेत् ।
स क्षिप्रमनृजुर्लुब्धः स्वजने नैव बध्यते ॥ ३१ ॥

अगूढ विभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिन ।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः ॥ ३२ ॥

यश्यानेया विधेयाश्च नच संघर्ष शीलिनः ।
विषये दानरुचयो नरा यस्य स पार्थिवः ॥ ३३ ॥

चारश्च मणिधियश्चैव काले दानममत्सराव ।
युक्तयादान न चादानमयोगेन युधिष्ठिर ॥ ३४ ॥

सतां सग्रहणं शौर्यं दाक्ष्यं सत्यं प्रजाहितं ।
अनार्जैवरार्जवैश्च शत्रु पक्षस्य भेदनम् ॥ ३५ ॥

केतयानां च जीर्णानामवेक्षा चैव सीदताम् ।
द्विविधस्य च दण्डस्य प्रयोगः काल चोदितः ॥ ३६ ॥

यः नृपतिः राजा सर्वाभिशंकी भवेत । स अनृजुः लुब्धः क्षिप्रमेव स्वजनेनैव बध्यते ॥ ३१ ॥

यस्य राष्ट्र निवासिनः पौराः नागरिका नयापनय वेत्तारः स राजा राजसत्तमः । राजश्रेष्ठः ॥ ३२ ॥

बलानां दर्पणं नित्यं प्रजानामन्ववेक्षणम्
कार्येष्वखेदः कोशस्य तथैव च विवर्धनम् ॥ ३७ ॥
नीति धर्मानुसरण नित्यमुत्थानमेव च ।
उत्थान हीनो राजा हि बुद्धिमानपि नित्यशः ॥ ३८ ॥
प्रधर्षनीयः शत्रूणां भुजङ्ग इव निर्विषः ।
नच शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोपि बलीयसा ।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च ॥ ३९ ॥

प्रजाना बलानां च नित्य दर्पणं तेषां अन्ववेक्षणम् । कार्येषु अखेद. कोशस्य विवर्धनम् ॥ ३७ ॥

नित्यं उत्थानं शत्रोरुपरि गमनम् । उत्थान हीनो ही राजा बुद्धिमानपि नित्यशः शत्रूणां प्रधर्षणीयः भवति ॥ ३९ ॥

